

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178877

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H83

^{P. G H}
Acc No. 3333

KISD

Author :

9
कमलेश्वर

Title :

शिव बंगला

Osmania University Library

P. G. H

Accession No. 3333

ଶ୍ରୀ ଶ୍ରୀମତୀ

book should be returned on or before the date last
low.

पांडवों के राजसूय-यज्ञ की प्रतिष्ठा और सफलता को देखकर जहाँ भीष्म, विदुर, और द्रोणाचार्य को हार्दिक प्रसन्नता हुई वहाँ कौरव-कुल पर आतंक के बादल छा गए ।

येलोग खांडवप्रस्त से हस्तिनापुर पहुँचे तो दुर्योधन ने अपने मित्रों तथा भाइयों की एक सभा बुलाई और उसके मध्य खड़े होकर कहा, “देखा आप लोगों ने पांडवों का शक्ति-संचालन ! यह सब हमारे विनाश का सूचक है ।”

दुर्योधन के निरुत्साहपूर्ण शब्द सुनकर महाबली कर्ण ललकारकर बोले, “क्या कायरों जैसी बातें कर रहे हो दुर्योधन ! पाँचों पांडवों को मैं कीट-पतंगों के समान समझता हूँ । राजसूय-यज्ञ को देखकर तुम न आतंकित हो उठे हो कि उसे अपने विनाश का सूचक मान बैठे ।”

दुर्योधन कर्ण की वीरतापूर्ण बात सुनकर चतुराई के साथ बोला, “तुम्हारी वीरता से मैं अपरिचित नहीं हूँ मित्र कर्ण ! परन्तु नीति यही कहती है कि जो गाँठ हाथ से खुल सके, उसे खोलने के लिए दाँतों का प्रयोग करना व्यर्थ है ।”

“मैं तुम्हारा मंतव्य नहीं समझा दुर्योधन !” कर्ण बोला ।

दुर्योधन मुस्कराकर बोला, “पांडवों ने राजसूय-यज्ञ किया है और मैं द्यूत-सभा का आयोजन करूँगा । अब तुम देखना मैं पांडवों को किस प्रकार बिना युद्ध के ही परास्त करता हूँ ।”

शकुनि अपने भांजे के कुचक्रों से भली भाँति परिचित था । वह खेत होकर बोला, “दुर्योधन ! यह बात तुमने बहुत खूब सोची । हमें द्यूत-सभा का आयोजन करके पांडवों को उसमें निमंत्रित करना चाहिए । राजसूय-यज्ञ की बाजी पर युधिष्ठिर को हराकर उनका राज-पाट उनसे छीन लेना चाहिए ।”

महाबली कर्ण बोले, “परन्तु क्या तुम्हें यह आशा है कि महाराज धृतराष्ट्र द्यूत-सभा आयोजित करने की आज्ञा देदेंगे ?”

दुर्योधन मुस्कराकर बोला, “उसकी तुम चिन्ता न करो कर्ण पिताजी को मैं इसकेलिए राजीकरलूँगा ।”

दुर्योधन के मित्रों और बन्धुओं में दुर्योधन की बात सुनकर ह छागया । उन सबने उन्मत्त होकर एक स्वर में कहा, “द्यूत सभा निश्चित रूप से हमारी विजय होगी ।”

दुर्योधन द्यूत-सभा की आज्ञा लेने-के-लिए अपने पिता धृतराष्ट्र के पास पहुँचा और भयातुर वाणी में बोला, “महाराज ! पांडवों के अभिमान का पारावार नहीं रहा । मुझे ज्ञात हुआ है कि वे बहुत शीघ्र हस्तिनापुर पर आक्रमण करने का विचार कर रहे हैं ।”

दुर्योधन की बात सुनकर महाराज धृतराष्ट्र हँसकर बोले, “बच्चों जैसी बातें करते हो दुर्योधन ! भीष्म और द्रोण जैसे वीरों संरक्षण में जिस राज्य का संचालन हो रहा है, क्या पांडव छोकरे व स्वप्न में भी उसपर आक्रमण करने की मूर्खता कर सकते हैं ?”

दुर्योधन बोला, “पांडव सीधा आक्रमण नहीं करेंगे महाराज ! वे छल-बल से हमें ध्वस्त करने की बात सोच रहे हैं । छलिया कृष्ण उनके साथ है । उसके छल को परास्त करनेकेलिए मैंने द्यूत-सभा आयोजित करने का विचार किया है ।”

“द्यूत-सभा !” आश्चर्यचकित होकर धृतराष्ट्र बोले । “नहीं, मैं इस घृणित कार्य की तुम्हें आज्ञा नहीं देसकता दुर्योधन ! इससे हमारा प्रतिष्ठा को बड़ा लगेगा ।”

दुर्योधन आवेष में आकर बोला, “आपकी प्रतिष्ठा को तब बढ़ नहीं लगा जब पांचाली ने मुझे ‘अंधे का अंधा’ पुत्र कहा था । आपका प्रतिष्ठा को तब बड़ा नहीं लगेगा जब आप कृष्ण के छल-बल के शिकार होकर हमें भिखारियों के समान साथ लेकर बन-बन भटकते फिरेंगे

मेरे द्यूत-सभा-संचालन से आपकी प्रतिष्ठा को बढ़ा लगेगा तो आप जैसा उचित समझें, करें। हमारे भाग्य में भी जो बदा है हम उसे भुगतते चलेजाएँगे।”

पुत्र-मोह में ग्रस्त होकर महाराज धृतराष्ट्र बोले, “तो करो द्यूत-सभा का आयोजन। परन्तु मैं बीच में नहीं पड़ूंगा।”

यह सुनकर दुर्योधन की बाँछें खिल गईं। उसने हर्षित मन से अपने भाईयों और मित्रों को जाकर यह समाचार सुनाया तो वे सब हर्ष से नाँच उठे।

दुर्योधन ने द्यूत-सभा का आयोजन किया और उसमें पाँचों पांडव शोपदी सहित हस्तिनापुर आए।

सभा प्रारम्भ हुई तो शकुनि महाराज युधिष्ठिर से बोले, युधिष्ठिर ! इस शुभ अवसर पर आओ चार हाथ पासे फेंकलिये।”

महाराज युधिष्ठिर बोले, “जुग्रा खेलना सब पापों की जड़ है। मैं जुग्रा नहीं खेल सकता।”

यह सुनकर शकुनि बोला, “रहने दो ये पाप-पुण्य की बातें छाँटने को। राजसूय-यज्ञ करने के लिए आपने कितने ही निरापराध प्राणियों का वध किया। क्या वह पाप नहीं था ? यह साधारण सा खेल पाप होगया आपके लिए और वह पुण्य था।”

शकुनि की इस युक्ति के सम्मुख युधिष्ठिर को मौन रह जाना पड़ा। वह जुग्रा खेलने को उद्यत होगए और जुए में अपना राजपाट तथा स्वतन्त्रता तक दाव पर लगाकर हार गए। अन्तिम दाव पर उन्होंने धाँचाली को भी लगा दिया और उस दाव पर भी उनकी हार हुई।

खेल-खेल में इतना बड़ा अनर्थ होजाएगा इसकी उन्हें स्वप्न में भी धाशंका नहीं थी। वह इसे खेल-मात्र ही समझ रहे थे, परन्तु दुर्योधन चाल खेल रहा था। वह सब कुछ जीतकर शकुनि से बोला, “मामा

देखते क्या हो ? हमारा अपमान करनेवाली पांचाली को खींचकर सभा के बीच लेआओ और उसे नग्न करके हमारी जंघा पर बिठादो ।”

दुर्योधन के वचन सुनकर सभा में सन्नाटा छागया । शकुनि राज-महल से पांचाली को लाने के लिए चला तो भीम के नेत्र अंगारों के समान जलउठे । वह क्रोधित होकर बोले, “दुर्योधन ! होश में आकर बातेंकर । पांचाली की ओर किसी ने कुदृष्टि से देखा तो सभा में विनाश के बादल मँडलाउठेंगे ।”

भीम का गर्जन सुनकर दुर्योधन तनिक मुस्कराकर बोला, “धर्मराज युधिष्ठिर के छोटे भाई भीम ! तुम्हें विदित होना चाहिए कि तुम इस समय हमारे दास हो । तुम्हारी स्वाधीनता भी पर हम विजय प्राप्त कर चुके हैं ।”

भीम दुर्योधन की बात सुनकर आग-बगूला होउठा और क्रोधपूर्ण स्वर में बोला, “दुष्ट दुर्योधन ! जिस जंघा पर तूने पांचाली को बिठाने की बात कही है उसे भीम अपनी गदा से तोड़कर उसका रक्तपान करेगा ।”

परिस्थिति को समझकर अर्जुन ने भीम को शान्तकिया, परन्तु ज्वाला उनके भी हृदय में बहुत भयंकर जलरही थी । ।

शकुनि राजमहल में पहुँचा और उसने पांचाली को सभा-मध्य चलने के लिए कहा । पांचाली समस्त वृत्तांत को सुनकर भयभीत होउठी, परन्तु फिर भी धैर्य धारण करके बोली, “मामा ! क्या सचमुच कौरवों के विनाश का समय निकट आगया है ? क्या तुम्हें संसार में रहना नहीं है जो इस प्रकार के नीच कृत्यों पर उतरआए हो ? इस समय मैं रजस्वला हूँ । यदि मैं ऐसी अवस्था में न होती तो निश्चय ही तुम्हारे साथ चलती । ऐसी दशा में मैं कैसे चलसकती हूँ ?”

जब शकुनि ने देखा कि वह योंही नहीं चलेंगी तो उसने बल-प्रयोग की ठानी । पांचाली भयातुर होकर गांधारी के महल की ओर भागखड़ी हुई, परन्तु शकुनि ने उन्हें बीच में ही पकड़लिया । पांचाली रोई, चिल्लाई, परन्तु वहाँ कोई उनकी करुण-पुकार को सुननेवाला नहीं था ।

शकुनि ने पांचाली के केश पकड़ लिए और उन्हें राजसभा की ओर घसीटने लगा। वह उन्हें उसी प्रकार घसीटता हुआ राजसभा में ले गया। पांचाली ने सभा मध्य पहुँचकर सभा में उपस्थित वीरों की मानवता को ललकारा। पाँचों पांडवों की वीरता को ललकारा। कुरु-वंश के गौरव को ललकारा, परन्तु उसने देखा कि वहाँ का समस्त वायु-मंडल शान्त बनारहा। पांचाली की दशा पर किसी के भुजदण्ड नहीं फड़के, किसी में मानवता जाग्रत नहीं हुई, किसी की वीरता उन्हें उस अपमान से मुक्त कराने के लिए सम्मुख न आसकी।

यह देखकर पांचाली का हृदय विदीर्ण हो उठा। उनके नेत्रों से अश्रुओं की धारा प्रवाहित हो चली।

उन्होंने देखा कि आज भीम की गदा टूट चुकी थी, अर्जुन के गांडीव को जंग लग गया था, नकुल सहदेव की वीरता कायरता में परिणित हो गई थी, महाराज युधिष्ठिर की धर्मपरायणता उन्हें छोड़ चुकी थी।

पांचाली के नेत्र भयभीत होकर आकाश की दिशा में उठे गए। उन्हें लगा कि भूमि धर्मविहीन हो चुकी थी। कौरवों का पाप भूमि को निगल-जाना चाहता था।

पांचाली की यह दशा देखकर कौरव-पक्ष खिलखिलाकर हँस पड़ा। उनका अट्टहास वहाँ के वायुमंडल में आच्छादित हो गया। पांडवों के मस्तक भूमि की दिशा में झुक गए। सभा में सन्नाटा छा गया।

शकुनि पांचाली को उसके केश पकड़कर खींचता हुआ दुर्योधन के निकट ले गया।

यह देखकर भीष्म पितामह भावी उत्पात की आशंका से भयभीत हो उठे, परन्तु एक शब्द भी न बोले।

महात्मा विदुर ने इसका विरोध किया, परन्तु उन्मत्त दुर्योधन ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया।

दुर्योधन शकुनि से बोला, “देखते क्या हो मामा ! हमारा अपमान करनेवाली इस अभिमानिनी का अभिमान चूरकरो । इसे निरावरण करके हमारी जंघपर लाकर बिठादो ।”

दुश्शासन ने पांचाली का चीर उतारने के लिए हाथ बढ़ाया तो पांचाली ने निराश दृष्टि से पाँचों पांडवों और भीष्म पितामह की ओर देखकर कहा, “एक अबला पर भरी सभा में यह अत्याचार होते देखकर भी कुरुवंश के वीरों और विशेष रूप से पितामह को मौन देखकर मैं सोचती हूँ कि यह वंश रसातल के गहनगर्त में गिरा चाहता है । इसके समक्ष न्याय के लिए गिड़गिड़ाना मैं अपना अपमान समझती हूँ ।” इतना कहकर उसने हाथ जोड़कर अपने नेत्र बन्द करके कहा, “भय्या कृष्ण ! क्या तुम भी कुरु-वंश के साथ रसातल को चलेगए ?”

कृष्ण गुप्त वेश में बैठे यह अधम लीला देखरहे थे । अभी तक वह मौन थे, परन्तु ज्यों ही दुश्शासन ने द्रोपदी का चीर उतारने के लिए हाथ बढ़ाया त्यों ही वह अपने स्थान से उठकर सभा के मध्य आगए और घन-गर्जन के समान गम्भीर वाणी में बोले, “दुर्योधन ! नीचता की पराकाष्ठा होचुकी है । मैं देखरहा था कि तुम्हारे अन्दर मानवता जगृत होती है अथवा नहीं । परन्तु देखरहा हूँ कि तुम मानवीय घरातल से बहुत नीचे गिरचुके हो । तुम्हारी आत्मा मरचुकी है ।

पांचाली की ओर किसी ने हाथ बढ़ाया या कुदृष्टि से देखा तो यहाँ प्रलय के काले बादल मँडरा उठेंगे । पांचाली के सतीत्व का नहीं आज यहाँ कुरु-वंश का विनाश होगा ।”

कृष्ण की बात सुनकर सभा भयभीत होउठी । धृतराष्ट्र और भीष्म थर-थर काँपनेलगे । दुर्योधन को पसीना आगया । दुश्शासन अचेत होकर भूमि पर गिरपड़ा ।

कृष्ण उतनी ही गम्भीर वाणी में बोले, “अन्याय और अधर्म सीमा का उलंघन करचुके हैं । दादा भीष्म और आचार्य द्रोण की आँखें इस

अधर्म को देखती रहीं। महाराज युधिष्ठिर द्रोपदी को दाव पर रखने का कोई अधिकार नहीं रखते और वह भी तब जब जब अपने को हार चुके थे।”

कृष्ण की न्यायपूर्ण बात सुनकर सभा का वातावरण एक स्वर ने उनके पक्ष में हो गया।

कृष्ण बोले, “बहिन पांचाली का चीर-हरण करने के लिए वह व्यक्ति समक्ष आए जिसे अपने प्राणों का मोह न हो।”

स्थिति की गम्भीरता को समझकर धृतराष्ट्र सभा में आकर बोले, “यादव-कुल-शिरोमणि ! बच्चों के खिलवाड़ पर इतने क्रुद्ध न हो। हमें इसका ज्ञान नहीं था। मेरे रहते क्या पांचाली का चीरहरण कभी सम्भव है ? मैं पांडवों को इनका राज्य वापस देता हूँ।”

धृतराष्ट्र ने परिस्थिति को सँभाल लिया। परन्तु इससे दुर्योधन के हृदय की द्वेपाणि और भी भड़क उठी। वह कृष्ण के सम्मुख कुछ न बोल सका। वह केवल अन्दर-ही-अन्दर घुटकर रह गया।

स्थिति ठीक कर कृष्ण अपनी राजधानी को लौट गए।

कृष्ण के चले जाने पर दुर्योधन ने फिर अपनी चालखेली और शकुनि ने युधिष्ठिर को फिर जुआ खेलने के लिए ललकारा।

युधिष्ठिर अपनी पहिली हार का बदला लेने के लिए फिर जुए पर जा डटे। इस बार निश्चय हुआ कि हारने वाले पक्ष को बारह वर्ष के लिए वनवास को जाना होगा और एक वर्ष गुप्त रूप से रहना होगा। यदि उस एक वर्ष में उत्तका पता चल गया तो उन्हें फिर बारह वर्ष के लिए वनवास जाना होगा। युधिष्ठिर को जुए में शकुनि से फिर मात खानी पड़ी और परिणाम स्वरूप पाँचों पांडवों को वनवास के लिए प्रस्थान करना पड़ा। पांडव अपना राज-पाट छोड़कर वन की चले गए।

कीरवों की प्रसन्नता का पारावार न रहा। उनके कुल में आनन्द की लहर दौड़ गई। दुर्योधन की नीति-कुशलता पर उसके सब साथी

तथा भाई मुग्ध होउठे । परन्तु प्रजा-जनों में शोक छागया । उनकी आशा निराश में परिणित होगई ।

यह समाचार जब खांडवप्रस्थ में पहुँचा तो वहाँ की जनता हताश होउठी । उन्होंने अपने आपको अनाथ अनुभव किया । राज्य में शोक का वातावरण उपस्थित होगया ।

२

पाँचों पांडव और पांचाली तापस-वेश में वन को चलपड़े । माता कुन्ती को पांडवों ने महात्मा विदुर की देखरेख में उन्हीं के पास छोड़ दिया । उन्हें इस प्रकार जाते देख कौरव-पक्ष ने उनका उपहास किया, परन्तु जनता रो रही थी । जनता को लग रहा था कि अब राज्य में अन्याय के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देगा ।

कौरवों ने पांडवों का लाख उपहास किया और व्यग्य-वाण छोड़े, परन्तु पांडव मौन बने रहे । उनकी ज़बान से एक शब्द भी उनके उत्तर में न निकला । वे अपने मार्ग पर आगे बढ़ चले ।

पांडवों के हृदय क्षोभ से भरे हुए थे । पांचाली के अपमान को स्मरण कर उनके हृदयों में ज्वाला सुलग रही थी । उनके नेत्र अंगारों के समान दहकरहे थे, परन्तु अपने क्रोध को वे इस समय कालूट के समान शिव बनकर पी गए थे ।

महात्मा विदुर बहुत दूर तक पांडवों को छोड़ने के लिए गए । उनके साथ बहुत से पुरवासी भी थे । अन्त में विदीर्ण हृदय लेकर वे सब वापस लौट आए ।

महात्मा विदुर ने वापस लौटकर महाराज धृतराष्ट्र से भेंट की और सकरुण वाणी में कहा, “महाराज यह जो कुछ भी हुआ, अच्छा नहीं हुआ । तेरह वर्ष पलक मारते निकल जाएँगे और जब ये लोग वापस

लीटेंगे तो अपने अपमान का बदला लिए बिना नहीं रहेंगे। परस्परिक कलह का यह बीज जो दुर्योधन ने बोदिया है इसका फल अच्छा नहीं निकलेगा।

मुझे दिखाई दे रहा है कि वह समय दूर नहीं है जब हस्तिनापुर एक विशाल श्मशान-भूमि में परिणित होगा और इसपर कुरु-वंश के प्रतापी वीरों की चिताएँ जलती दिखाई देंगी।

दुर्योधन की प्रवृत्ति यदि इसी प्रकार अधर्म की ओर रही तो यह एक दिन महारिनाश का कारण बनेगी। मैं दोनों परिवारों के समान शुभ-चिंतक के नाते आपको चेतावनी दे रहा हूँ कि आप समय रहते इस गम्भीर स्थिति को सँभाल लें।”

धृतराष्ट्र को विदुर की नीतिपूर्ण बात भली नहीं लगी। उन्हें उनकी बात में पांडवों की सहानुभूति की बू आई। वह मुस्कराकर बोले, “महात्मा विदुर ! तेरह वर्ष का लम्बा काल सोचने के लिए कुछ नहीं है। आप अभी से इतने चिंताग्रस्त न हों। समय आने पर सब देख लिया जाएगा।”

महात्मा विदुर को धृतराष्ट्र का यह उत्तर अपने बच्चों के मोह में लित प्रतीत हुआ। वह चुपचाप वहाँ से उठकर चले आए।

महात्मा विदुर के नेत्रों के सम्मुख उस समय रण-चंडी नृत्य कर रही थी। वह अपने विचारों को दबाकर मौन नहीं रहसकते थे। एक दिन इसी विषय को लेकर उन्होंने धृतराष्ट्र की भरी सभा में भर्त्सना की। महाराज धृतराष्ट्र को उनपर क्रोध आगया। वह बोले, “विदुर ! तुम हमारे राज्य में रहकर, हमारा अन्न खाकर, हमारे ही विरुद्ध बोलते हो। यह कृतघ्नता की बात है। राजनीति में यह क्षम्य नहीं है। भाई होने के नाते मैं तुम्हें दण्ड नहीं देता, परन्तु तुम्हारा यहाँ रहना भी अब मैं सहन नहीं करसकता। प्रातःकाल होते ही तुम यहाँ से कूच कर जाओ और वहीं जाकर रहो जहाँ पांडव रहते हैं।”

विदुरजी बोले, “मैं महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा का पालन करूँगा परन्तु चाटुकारिता करके आपको कुमार्ग की राह बताऊँ, यह मुझसे कभी नहीं होगा । मैं कल प्रातःकाल हस्तिनापुर छोड़ूँगा ।”

महात्मा विदुर दूसरे दिन प्रातःकाल अपनी पत्नी और कुन्ती को समझाकर काम्यक वन की ओर चलपड़े । पांडव उस समय वहीं हैं । कई दिन की यात्रा के पश्चात् उन्होंने पांडवों से जाकर भेंट की ।

महात्मा विदुर का पांडवों ने सहर्ष स्वागत किया । उन्हें महाराज धृतराष्ट्र द्वारा उनकी भर्त्सना का ज्ञान प्राप्तकर हार्दिक कष्ट हुआ । धर्मराज युधिष्ठिर बोले, “आप हमारे चचा हैं । नीति परांगत होने के नाते आप हमारे गुरु-तुल्य पूज्य हैं । आपकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्तकर हम अपने आपको धन्य समझते हैं । आज्ञा करें तो चाचीजी और माताजी को भी यहीं पर लेआएँ ।”

महात्मा विदुर बोले, “शीघ्रता न करो बेटा ! मेरे गुप्तचर मुझे यहीं पर आकर क्षण-क्षण की सूचना देंगे । समय आने पर उन्हें भी बुला लियाजाएगा । पहिले मैं देखनाचाहता हूँ कि मेरे निकालेजाने का द्रोण और दादा भीष्म पर क्या प्रभाव पड़ता है ?”

धृतराष्ट्र द्वारा महात्मा विदुर के निकालेजाने का सन्देश जब भीष्म और द्रोण के कानों में पड़ा तो वे चिंतित होउठे । उन्हें धृतराष्ट्र की अदूरदर्शिता पर बहुत क्षोभ हुआ ।

धृतराष्ट्र ने भी यह कार्य बच्चों के मोह और दुर्योधन की कुमंत्रणा के फलस्वरूप करतोदिया परन्तु बाद में उन्हें भी बहुत खेद हुआ । इतने बड़े नीतिज्ञ को शत्रु-पक्ष में भेजकर उन्हें लगा कि उन्होंने अपने को बहुत अशक्त करलिया ।

उन्होंने भयभीत होकर अपने दूतों को बुलाया और आदेश दिया, “महात्मा विदुर जहाँ भी हों उन्हें तुरन्त वापस लेआओ । उनसे कहना कि आपके प्रति किए गए व्यवहार से महाराज धृतराष्ट्र बहुत लज्जित

हैं। उन्होंने अन्न-जल ग्रहण करना बन्द कर दिया है। वह उस समय तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे जब तक आप हस्तिनापुर नहीं लौट आएंगे।”

दूत महाराज की आज्ञा प्राप्तकर विदुरजी की खोज में चल दिए।

कौरवों के दूत जब पांडवों के आश्रम से पहुँचता देखा वहाँ वेद-ध्वनि से यज्ञ हो रहा था। वहाँ का वायु-मंडल यज्ञ की मुग्ध से आच्छादित था।

आश्रम की शोभा देखकर कौरवों के दूत चकित रह गए। उन्होंने विदुरजी और पांडवों का अभिवादन करके महाराज धृतराष्ट्र का संदेश उन्हें दिया।

महात्मा विदुर ने परिस्थिति का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कर पांडवों को समझाया और हस्तिनापुर लौट गए।

धृतराष्ट्र को महात्मा विदुर के लौटने का समाचार मिला तो उन्होंने गले लगाकर उनसे भेंट की और अपने दुर्व्यवहार पर पश्चात्ताप किया।

कृष्ण के पास जब कौरवों के इस दूसरे कुचक्र का समाचार पहुँचा तो उनकी आत्मा खिन्न हो उठी। वह महाराज द्रोपद के पास पहुँचे। कृष्ण को देखकर महाराज द्रोपद के खिन्न मन को तनिक शांति मिली। दूसरे दिन कृष्ण और धृष्टद्युम्न काम्यक वन में पांडवों के आश्रम में पहुँचे, परन्तु पांडव वहाँ से प्रस्थान कर द्वैत वन की ओर चले गए थे।

कृष्ण और धृष्टद्युम्न ने द्वैत-वन में जाकर पांडवों को तापस वेष में देखा तो उनका हृदय विदीर्ण होगया। कृष्ण और धृष्टद्युम्न को देख कर पांडव प्रेम से गद्गद् होगए। उन्होंने उनका सादर अभिनंदन किया।

पांचाली को तपस्विनी-वेष में देखकर धृष्टद्युम्न अधीर होगया। पांचाली के भी धैर्य का बाँध टूट गया। उसके नेत्र अश्रु-जल से पूर्ण होगए।

कृष्ण पांचाली को व्याकुल देखकर बोले, “विह्वल न हो बहिन ! तुम्हारा पक्ष सत्य पर आधारित है । विजय अन्त में तुम्हारी ही होगी । वह दिन दूर नहीं है जब तुम पांडवों के पराक्रम को देखकर मुग्ध हो उठोगी । तुम्हारा राजपाट कौरवों को लौटाना होगा और विजय-श्री तुम्हारी दासी होगी ।”

कृष्ण की मधुर वाणी सुनकर पांचाली को तनिक धैर्य बँधा ।

कृष्ण गम्भीर वाणी में बोले, “उस दिन द्यूत-सभा में धृतराष्ट्र तनिक चालबाजी खेलगए वरना उसी दिन मैं उन्हें आनन्द चखादेता । दुर्योधन मौन होगया, वरना मैं उसकी सब मक्कारी निकालदेता । मुझे तुरन्त वापस न लौटना होता तो यह जो कुछ हुआ, कभी न होने पाता । तुम लोगों के वन से लौटने पर यदि दुर्योधन ने राज्य लौटाने में आना-कानी की तो रणचण्डी का आह्वान करना होगा ।”

धृष्टद्युम्न ने पांचाली को अपने साथ चलने को कहा, परन्तु वह तय्यार नहीं हुई । कृष्ण सुभद्रा को अपने साथ द्वारिका लेगए ।

एक दिन पांचाली धर्मराज युधिष्ठिर से बोलीं, “महाराज ! आप लोग जो अत्याचार को सहनकर इस प्रकार वन-वन भटक रहे हैं क्या यह पाप नहीं है ? क्या अधर्म को सहनकरना भी कोई धर्म है ।”

महाराज युधिष्ठिर बोले, “देवि ! तुम्हारी बात तर्क-संगत है, परन्तु मैं धर्म-बन्धन में आबद्ध हूँ । धर्म से विचलित होना कायरता है । धर्म-रक्षक की सर्वदा विजय होती है । तुम क्षमा की शक्ति को पहिचानो । क्षमा से बड़ी शक्ति अन्य किसी वस्तु में नहीं है ।”

पांचाली मार्मिक स्वर में बोली, “तब तो विधाता ही कुटिल है । सच्चे लोगों को कष्ट देने और उन्हें भटकाने में उसे आनन्द आता है ।”

युधिष्ठिर दुखी मन से बोले, “यह तुमने क्या कहा देवि ! तुम जो कुछ कहना चाहती हो मुझे कहो । विधाता को दोष न दो । विधाता कभी अन्धाय नहीं करता । वह परम दयालू हैं । यह सब विपत्ति मेरे

अपने कुकृत्यों का परिणाम है। मैं जुआ न खेलता तो यह स्थिति कभी पैदा न होती।”

पांचाली मौन होगई।

भीम पांचाली की बात का समर्थन करके बोला, “महाराज ! भरत-खण्ड का राज्य आज तक कभी अन्यायियों के हाथों में नहीं रहा। आप आज्ञा करें तो मैं अकेला दुर्योधन को यमपुर पहुँचाकर आपको राज-सिंहासन पर बिठासकता हूँ।”

धर्मराज युधिष्ठिर बोले, “वह समय दूर नहीं है भीम ! जब तुम्हें अपने पराक्रम का जौहर दिखाना होगा। इस समय हम वचन-वद्ध हैं। वचन-विमुख होकर अधर्म से राज्य प्राप्त करना उचित नहीं है। मैं जानता हूँ कि हमारे वन से लौटने पर दुर्योधन हमें हमारा राज्य वापस नहीं करेगा और हमें युद्ध करना होगा। तब वह धर्म-युद्ध होगा और मैं तुम्हें सहर्ष आज्ञा दूँगा कि तुम दुर्योधन से उसकी नीचता का बदला लो।”

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी उन्हें व्यासजी आते दिखाई दिए। व्यासजी के दर्शनकर पांडव प्रसन्न होउठे। सभी ने व्यासजी के चरण छूकर उनका अभिनंदन किया।

जो बातें अभी तक चल रही थीं उन्हें व्यासजी के समक्ष रखा तो उन्होंने युधिष्ठिर के मत का समर्थन करते हुए कहा, “आप लोगों को वन में रहकर मौन तपस्वी बन जाना उचित नहीं है। आपको आज से तेरह वर्ष पश्चात आनेवाली परिस्थिति के प्रति सतर्क रहना चाहिए, शक्ति का संचय करना चाहिए। निरुद्देश्य बैठारहना कायरता का लक्षण है। आप लोगों को अपने अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते रहना चाहिए और अर्जुन को दिव्यास्त्रों को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।”

यह आदेश देकर व्यासजी विदा होगए।

व्यासजी के गृह-मंत्र को प्राप्त कर अर्जुन दिव्यास्त्र प्राप्त करने हिमालय की ओर चलदिए ।

चलते समय पांचाली ने उनकी आरती उतारी और मस्तक पर तिलक करके अश्रुपूर्ण नेत्रों से सकरुण वाणी में बोलीं, “हृदय-वल्लभ वीर शिरोमणि ! जाइए और अपने व्रत में सफलता प्राप्त कीजिए । भरतखण्ड आपकी वीरता का जोहर देखने के लिए अपने आशा-नेत्रों को पसारे उत्मुखतापूर्ण दृष्टि से प्रतीक्षा कर रहा है । विधाता आपकी मनोकामना पूर्ण करें ।”

पांचाली से विदाले अर्जुन अपने पुरोहित धौम्यजी तथा महाराज युधिष्ठिर के पास पहुँचे । उन दोनों ने अर्जुन को गले लगाकर अपनी शुभकामनाएँ प्रकट कीं और आशीर्वाद देकर विदाकिया ।

अर्जुन ने हिमालय प्रदेश की यात्रा करतेहुए वहाँ के सभी राज्यों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किए और अनेकों नवीन विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया ।

युधिष्ठिर ने भी अपने अन्य तीन भाइयों और पुरोहित जी को साथ लेकर देशाटन किया और देश के विभिन्न राज्यों में जाकर अपने अनुकूल वातावरण बनाया । यात्रा करते-करते ये गंधमादन पर्वत पर पहुँच गए ।

वहीं पर पांडवों की यक्षों से मुटभेड़हुई । भीम ने यक्षों को मार भगाया तो वे अपने राजकुमार के पास पहुँचे और उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाया ।

महाराज कुवेर को जब पांडवों के वहाँ आने की सूचना मिली तो उन्होंने सम्मानपूर्वक उनका स्वागत किया । वहींपर अर्जुन ने उत्तर-पथ की यात्रा समाप्तकर अपने भाइयों से भेंट की ।

अर्जुन ने नए-नए अस्त्र अपने भाइयों और पांचाली को दिखाए तथा नई विद्याओं का प्रदर्शन किया तो पांडव आनन्दातिरेक से उन्मत्त हो उठे । उनके भाइयों ने उन्हें अपनी छाती से लगालिया ।

दुर्योधन के शिल्पकारों ने कार्य प्रारम्भ कर दिया ।

गंधर्वराज चित्रथ भी उस समय उसी वन के सरोवर पर अपनी रानियों और दासियों के साथ ठहरे हुए थे । उनके अनुचरों ने दुर्योधन के अनुचरों को सरोवर पर जाने से रोक दिया ।

दुर्योधन को यह समाचार मिला तो उन्होंने क्रोधित होकर आज्ञा दी कि गंधर्वों को वन से निकालकर बाहर भगा दिया जाए ।

दुर्योधन के सेवकों ने गंधर्वों से जाकर दुर्योधन की आज्ञा सुनाई तो वह क्रुपित होकर बोले, “तुम्हें पता है कि तुम किससे बातें कर रहे हो ? मूर्खों ! क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है कि गंधर्व दुष्ट दुर्योधन की आज्ञा का पालन नहीं करते । भाग जाओ यहाँ से, नहीं तो तुम सबको बन्दी बना लिया जाएगा ।”

दुर्योधन के सेवक वहाँ से भाग खड़े हुए और दुर्योधन से जाकर वे बातें और भी बढ़ा-चड़ाकर कहीं ।

दुर्योधन क्रोध से पागल हो उठा । उसने अपने सेवकों को गंधर्वों पर आक्रमण करने की आज्ञा दी, परन्तु यक्षों ने उन्हें बुरी तरह हरा दिया । उनकी सहायता के लिए कर्ण वहाँ पहुँचा । उसकी भी पराजय हुई । उसे भी पीठ दिखाकर भागना पड़ा ।

दुर्योधन यह देखकर क्रोधावेष में स्वयँ लड़ने के लिए उद्यत हुआ और अपनी पूर्ण सेना के साथ जाकर यक्षों पर धावा बोल दिया ।

यक्षों ने वीरतापूर्वक युद्ध किया और दुर्योधन को बन्दी बना लिया । उसकी मुश्कें कसकर यक्षों ने उसे ले जाकर अपने महाराज चित्रथ के चरणों में डाल दिया ।

दुर्योधन के सेवक दौड़कर महाराज युधिष्ठिर की शरण में गए ।

भीम को दुर्योधन की दुर्दशा का पता चला तो उनके आनन्द का पारावार न रहा । उन्होंने पांचाली से कहा, “पांचाली ! चलो तुम्हें दुर्योधन की मुश्कें कसी हुई दिखाकर लाऊँ ।”

भीम की बात सुनकर महाराज युधिष्ठिर बोले, “भीम ! यह हमारे कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, उपहास की सामग्री नहीं। भविष्य में चाहे जो कुछ भी क्यों न हो, इस समय तुम जाओ और दुर्योधन को चित्रथ के बन्दी-गृह से मुक्त कराओ। राजनीति कहती है कि शत्रु को मुक्त कराना उसका सबसे बड़ा अपमान है। यदि शत्रु में तनिक भी लज्जा है तो उसे चुल्लूभर जल में डूबमरना चाहिए।”

भीम और अर्जुन को महाराज युधिष्ठिर का आदेश रुचिकर नहीं हुआ, परन्तु उनके आदेश को वह टाल नहीं सकते थे। वे दोनों वीर यक्षों से युद्ध करने के लिए चलदिए। उनके प्रहारों के समक्ष यक्षों का ठहरना कठिन हो गया।

जब यक्षराज को अर्जुन और भीम के युद्ध-क्षेत्र में उतरआने का समाचार मिला तो उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र भूमि पर रखदिए और कहा, “भाई अर्जुन ! आप किससे लड़ रहे हैं ? हमारी आपकी तो पुरानी मित्रता है।”

अर्जुन ने भी वारण-वर्षा बन्द कर गांडीव को कंधे पर रखलिया और दोनों मित्र आपस में गले मिले। अर्जुन बोले, “मित्र ! धर्मराज की आज्ञा पालन करने के लिए मुझे आनापड़ा। उन्होंने मुझे दुर्योधन को छुड़ालाने की आज्ञा दी है। कृपया इस समय आप इसे छोड़ दें।”

युद्ध बन्द होनेपर पांचाली भी वहाँ पर आ गईं। वह दुर्योधन की मुश्कें बँधी देखना चाहती थीं और उसे जतादेना चाहती थीं कि भरी सभा में एक नारी को अपमानित करनेवाले कुरु-कुल-कलंकी में कितनी शक्ति है।

भीम पांचाली को देखकर बोले, “तुम भी आ गईं पांचाली ! चलो तुम ही इस नीच को आज मुक्त कराना।”

चित्रथ बोला, “अर्जुन ! क्या तुम्हें दुर्योधन के यहाँ आने का उद्देश्य ज्ञात नहीं है, जो तुम इसे छुड़ाने की बात कर रहे हो ? यह अपना ऐश्वर्य दिखाकर तुम्हें विढ़ानेआया था।”

चित्रथ की बात सुनकर भीम और पांचाली के हृदय आनन्द से भर-उठे। पांचाली अपने चेहरे पर बनावटी गाम्भीर्य और नेत्रों में बनावटी जल भरकर बोलीं, “महाबली भीम और प्रतापी धनंजय ! क्या आप देख नहीं रहे हैं कि हमारे जेठजी की यक्षराज ने कौसी दुर्दशा कर डाली है ? बेचारों की मुश्कें बाँधकर देखिए कितना अपाहज बना दिया है इन्हें। कुरु-कुल के प्रतापी युवराज की यह दुर्दशा देखकर क्या आपको दया नहीं आ रही ? इनपर दया करो। पांडव-वीरो ! इन्हें शीघ्र मुक्त कराओ। इनकी यह दुर्दशा मुझसे देखी नहीं जाती।”

पांचाली की व्यंग्य और उपहासपूर्ण बात सुनकर भी निर्लज्ज दुर्योधन को लज्जा न आई।

यक्षराज चित्रथ बोले, “कुमारी दुर्योधन ! सुनी तूने देवि पांचाली की वाणी। यह वही हैं जिनके केशों से पकड़वाकर तूने घसीटते हुए द्यूत-सभा में बुलवाया था और नारकीय कीड़े दुश्शासन को इन्हें नग्न करके अपनी जंघा पर बिठाने के लिए कहा था। पापी कहीं के, इस देवि की कुल-मर्यादा को देख और अपने कृत्यों पर दृष्टि डाल। यदि तेरे अन्दर लेषमात्र भी लज्जा है तो इस देवि के चरण धोकरपी।

तुझे अपनी जिस सम्पदा पर गर्व है वह सम्पदा इस देवि के समक्ष तुच्छ है। तेरे दुष्ट कार्य का बदला महाबली भीम को लेना शेष है। इनकी प्रतिज्ञा भंग न हो इसीलिए तुझे मुक्त किया जाता है, वरना आज तेरे प्राणों की मुक्ति नहीं थी।”

यक्षराज चित्रथ अर्जुन, भीम और पांचाली के साथ दुर्योधन को ठेलते हुए धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष ले गए और उनके चरणों में उसे पटककर बोले, “धर्मराज ! यह दुष्ट आपके समक्ष है। आप इसे छोड़ें या दण्ड दें।”

धर्मराज युधिष्ठिर बोले, “भाई चित्रथ ! आपने हमपर जो उपकार किया है उसके लिए हम आपके हृदय से कृतज्ञ हैं। आपने दुर्योधन को मुक्त करके कुरु-वंश को कलंकित होने से बचा लिया।”

दुर्योधन को मुक्तकर यक्षराज चले गए । पांचाली जेठजी ! अपनी शक्ति को देखकर किसी से युद्ध ठानाकीजिए । यह सौभाग्य की ही बात थी कि हम लोग यहाँ आपहुँचे । वरना न जाने आज आपकी क्या दुर्दशा होती ? हम लोग हर समय और हर स्थान पर तो आपकी रक्षा के लिए नहीं पहुँचसकते ।”

दुर्योधन सिर झुकाएहुए अपने शिविर में चला गया । पांडवों को अपना ऐश्वर्य दिखानेका उसका सब उत्साह भंग हो गया । आत्म-ग्लानि से उसका हृदय विदीर्ण हुआजारहा था । पांचाली के दया-वरण में लिपटेहुए व्यंगवाणों ने उसके हृदय को छलनी बना दिया था । उसे अपनी पराजय पर रह-रहकर पश्चाताप हो रहा था । आज उसके समक्ष उसकी अपनी तथा कर्ण की वीरता का आवरण फट चुका था । उसका हृदय भयभीत हो उठा था । वह अब अपना यह मुँह लेकर हस्तिनापुर में प्रवेश करने योग्य भी नहीं रहा था ।

दुर्योधन ने शिविर में जाकर अपने अंगों पर भभूत रमाली और बोला, “दुश्शासन ! तुम जाकर राज्य-भार सँभालो । मैं तुम्हें युवराज बनाता हूँ । मैं यहीं पर भूखा रहकर प्राण त्यागदूँगा । अपना यह पराजित मुख लेकर मैं वापस नहीं जासकता ।”

दुर्योधन की निरुत्साहपूर्ण बात सुनकर कौरव अधीर हो उठे । दुश्शासन बोला, “भय्या ! आज की इस तनिक सी घटना से आप इतने अधीर न हों । क्या आपके ऊपर पांडवों का आतंक छा गया ? हमारे साथ कृप, द्रोण, कर्ण, भीष्म, शकुनि और विदुर जैसे महारथी हैं । ये पाँच पांडव क्या उनके सामने डटसकेंगे ? हमारी पांडवों पर निश्चित रूप से विजय होगी ।”

कर्ण बोला, “भाई दुर्योधन ! आप अधीर न हों । मेरा रथ टूट गया था और सेना भागखड़ीहुई थी । अकेला रहजाने के कारण मुझे भी भागनापड़ा, नहीं तो आज सब यक्षों को यमपुरी पहुँचादेता ।

पांडवों ने तुम्हें अपमानित करने के लिए ही आज यहाँ यक्षराज चित्रथ को बुलाया था। हमें अपने इस अपमान का इनसे बदला लेना होगा।”

पांडवों से बदला लेने की उत्कट इच्छा ने दुर्योधन के हृदय में एक बार फिर आशा का संचार किया और वह हस्तिनापुर लौटने को उद्यत होगया।

३

महात्मा विदुर को दुर्योधन की द्वैत-वन-यात्रा का समाचार प्राप्त कर हार्दिक कष्ट हुआ। उसके दुष्टतापूर्ण आचरणों से उनका मन उसके प्रति कुण्ठित होचुका था।

अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करने के लिए दुर्योधन के द्वैत-वन में जाने को महात्मा विदुर ने नीचता की पराकाष्ठा समझा। तभी उन्हें उनके दूतों ने वहाँ का समाचार लाकरदिया। उन्हें जब यह सूचना मिली कि यक्षराज चित्रथ ने दुर्योधन को बन्दी बनालिया था और फिर महाराज युधिष्ठिर ने उसकी प्राण-रक्षा की तो उनका हृदय पांडवों की धर्म-परायणता और बुद्धिमत्ता के प्रति द्रवित होउठा। वह मुक्त कंठ से पांडवों की प्रशंसा करके भीष्म से बोले, “पितामह ! देखी आपने दुर्योधन और कर्ण की नीचता। ये लोग तपस्वी पांडवों के समक्ष अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करके उन्हें चिढ़ानेकेलिए द्वैत-वन में गए थे।”

भीष्म आश्चर्यचकित होकर बोले, “द्वैत-वन में ! द्वैत-वन में जाने की इन्हें धृतराष्ट्र ने आज्ञा क्यों दी ? मालूम देता है धृतराष्ट्र अपने बच्चों के मोह में फँसकर निपट अंधा होगया है। इसे दैहिक नेत्र तो विधाता ने ही नहीं दिए थे और अपने हृदय-चक्षुओं को इसने स्वयं फोड़ लिया।” इतना कहकर भीष्म का हृदय ग्लानि से भरउठा।

महात्मा विदुर बोले, “ये लोग द्वैत-वन में पहुँचे तो इसकी मुठ-भेड़ यक्षराज चित्रय से हुई और यक्ष-वीरोंने इन्हें दुरी तरह पराजित किया। कर्ण मैदान से भागखड़ा हुआ।”

भीष्म मुस्कराकर बोले, “यह बहुत अच्छा हुआ विदुर ! कर्ण की वीरता की कलई खुल गई। अब दुर्योधन को उसकी वीरता पर गर्व करने का अवसर नहीं रहेगा।”

“केवल इतना ही नहीं हुआ पितामह ! कर्ण के भागाने पर दुर्योधन ने स्वयं यक्षों पर आक्रमण किया। यक्षों ने उसे परास्त कर उसकी मुश्कें बाँधलीं और यक्षराज के चरणों पर लेजाकर पटक दिया।”

यह सुनकर भीष्म भयभीत होउठे। उन्हें यक्षराज पर क्रोध आया और आवेशपूर्ण स्वर में बोले, “इस नीच ने कुरु-कुल को कलंकित कर दिया। जो अपमान कुरु-कुल ने आज तक कभी सहन नहीं किया, वह आज सहन करना पड़ा।” और फिर प्रश्नवाचक दृष्टि से महात्मा विदुर की ओर देखकर बोले, “तो क्या दुर्योधन अभी भी यक्षराज के बन्दी-ग्रह में पड़ा है ? क्या उसकी रक्षा के लिए मुझे जाना होगा ?”

महात्मा विदुर बोले, “नहीं पितामह ! युधिष्ठिर को दुर्योधन के बन्दी होजाने की सूचना मिली तो उसने अर्जुन और भीम को उसकी रक्षा के लिए भेजा। अर्जुन और भीम ने यक्ष की सेना को परास्त कर दुर्योधन को लेजाकर युधिष्ठिर के चरणों में पटक दिया।”

यह समाचार प्राप्त कर भीष्म गद्गद होउठे। वह मुक्त कण्ठ से बोले, “विदुर ! पांडवों के आचरण प्रशंसनीय हैं। उनके कृत्यों को सुनकर हृदय गर्व से फूलउठता है।”

तभी उन्हें दुर्योधन अपने मित्रों और भाइयों के साथ लौटता दिखाई दिया। दुर्योधन की सूरत देखकर भीष्म बोले, “विदुर इस कुल-कलंक दुर्योधन ने कुरु-कुल में जन्म न लिया होता तो अच्छा होता।

जिस कुल को मैंने अपने रक्त से सींचा, उसे यह विध्वंस करने पर उतारू है। इसकी सूरत आँखों के सम्मुख आती है तो हृदय अथाह पीड़ा से भरउठता है। नेत्रों के समक्ष महाकाल के काले बादल मँडराते दिखाई देने लगते हैं।

अपने पूर्वजों के त्याग और बलिदानों पर मेरी दृष्टि जाती है तो हृदय गर्व से फूलउठता है और फिर जब मैं इस चांडाल की सूरत देखता हूँ तो लगता है कि इस वंश का गौरव अपने अन्तिम स्वाँस गिन-रहा है। सच जानो विदुर ! इस नीच की सूरत देखने को भी मन नहीं होता।”

महात्मा विदुर गम्भीर स्वाँस लेकर बोले, “आपका अनुमान सत्य ही है पितामह ! युद्ध के काले बादल आकाश पर मँडरारहे हैं। पाँडवों के वनवास के बारह वर्ष समाप्त होचुके हैं। अब अज्ञातवास का एक वर्ष शेष रहा है। वह भी पलक मारते समाप्त होजाएगा।

इधर मैं देखरहा हूँ कि दुर्योधन वेईमानी पर उतारू है। यह पांडवों को उनका आधा राज्य लौटाने को एक से लाख तक उद्यत नहीं है। आप स्वयँ विचारलें कि इसका परिणाम क्या होनेवाला है।”

“परिणाम वही होगा विदुर ! जो तुम सोचरहे हो, जो मैं सोच रहा हूँ। कुरु कुल का विनाश होगा और कुरु-कुल की भयंकर ज्वाला में देश-देशान्तर के वीर जलकर भस्म होजाएँगे। मानव-संस्कृति का घोर विनाशकाल सम्मुख दिखाई देरहा है। कुछ नहीं बचेगा विदुर ! सर्वनाश की काली छाया भूमंडल पर छाजाएगी।” भीष्म गम्भीरता-पूर्वक बोले।

“यही होगा पितामह ! इसके अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दे रहा। दुर्योधन के चारों ओर जो मन्दमति परामर्शदाता एकत्रित हैं, ये यही कुछ कराकर दम न लेंगे। कुरु-वंश ने एक लम्बे काल तक परिश्रम करके जो निर्माण किया है वह ध्वस्त होगा। कुछ नहीं बचेगा पितामह ! कुछ नहीं बचेगा।” गम्भीरतापूर्वक महात्मा विदुर बोले।

कुरु-कुल के इन दो महान् कर्णधारों के हृदय संताप से विदग्ध हो उठे । कुरु-कुल के विनाश की काली छाया को अपने नेत्रों के समक्ष नृत्य करतेदेखकर दोनों के नेत्र सजल होउठे ।

आज भरी सभा में भीष्म पितामह ने दुर्योधन से कहा, “दुर्योधन ! तुमने द्वैत-वन में जाकर कुरु-कुल को कलंकित किया । युधिष्ठिर वहाँ न होते तो तुमने कुरु-कुल-गौरव को सर्वश के लिए नष्ट करदिया होता । परन्तु यह अच्छा ही हुआ कि तुम्हें अपने पितामह की वीरता का पता चल गया । यक्ष-सेना के समक्ष पीठ दिखाकर भागभ्रानेवाले कर्ण पर आज से गर्व करना तुम्हें छोड़ देना चाहिए । यदि मेरा कहा मानो तो अपने पांडव भाइयों से विशुद्ध हृदय से मेलकरो और दोनों आधा-आधा राज्य बाँटकर सुख-चैन से राज्य करो । कुरु-कुल की प्रतिष्ठा पारस्परिक कलह में नहीं, पारस्परिक प्रेम-भाव में है ।”

भीष्म की बात सुनकर दुर्योधन को उसमें पांडवों के हित की बू आई । उसने अश्रुद्धा के साथ पितामह भीष्म की ओर देखा और सभा से उठकर चला गया । उसके पीछे-पीछे कर्ण, शकुनि और दुःशासन भी चले गए ।

(101)

तब भीष्म महाराज धृतराष्ट्र से बोले, “धृतराष्ट्र ! अपने हृदय-चक्षु खोलो और बेटों के मोह में अंधे न बनो । क्या आखेट के लिए एक द्वैत-वन ही था जहाँ जाने की तुमने दुर्योधन को आज्ञा दी ?”

धृतराष्ट्र लज्जित होकर बोले, “मैंने मना किया था इन लोगों को द्वैत-वन में जाने के लिए । परन्तु जब इन्होंने वचन दिया कि पांडवों के साथ कोई उत्पात नहीं करेंगे और दूसरी दिशा में जाएँगे तो मैंने आज्ञा दे दी ।”

कर्ण सभा-भवन से बाहर निकलकर बोला, “दुर्योधन ! सुनी तुमने इस बूढ़े भीष्म की बातें ? कितनी छल-पूर्ण थीं इसकी बातें ? यह पांडवों को पता नहीं क्या समझता है ? यह अन्न आपका खाता है और गुण

पांडवों के गाता है । यह मेरे और तुम्हारे अन्दर द्वेष पैदा करना चाहता है, जिससे तुम अशक्त होजाओ और पांडव तुम्हें हरा दें । मैं इसकी चालों को भली भाँति जानता हूँ ।”

“क्यों मामा शकुनि ! आपका क्या विचार है दादा भीष्म के विषय में ?” गम्भीरतापूर्वक दुर्योधन ने पूछा ।

शकुनि बोला, “कर्ण ठीक कह रहा है दुर्योधन ! तुम्हें इनकी चालों में आकर अपनी शक्ति को छिन्न-भिन्न नहीं करना चाहिए । कर्ण जैसा वीर साथी तुम्हें संसार में खोजे नहीं मिलेगा ।”

शकुनि के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर कर्ण गर्व से फूल उठा और सीना उभारकर बोला, “दुर्योधन ! मैं भीष्म को दिखा देना चाहता हूँ कि कर्ण क्या है ? तुम तैयारी करो । मैं दिग्विजय के लिए प्रस्थान करता हूँ और सब राजाओं के मस्तक भुकाकर उनसे चौथ वसूल करूँगा । इससे जो धन प्राप्त होगा उससे तुम राजसूय-यज्ञ करना ।”

कर्ण की यह वीरतापूर्ण बात सुनकर दुर्योधन बोला, “यह बात तुमने बहुत ठीक सोची कर्ण ! तुम दिग्विजय करके लौटोगे तो दादा भीष्म पर भी तुम्हारी वीरता की छाप पड़ेगी और फिर वह तुम्हें कायर नहीं कह सकेंगे ।”

कर्ण दिग्विजय को चल पड़ा । कर्ण जिस दिशा में भी गया उसने विजय पताका फहराई । कोई राजा उसके समक्ष सिर न उठा सका और जिसने सिर उठाया उसे पराजित होना पड़ा ।

कर्ण दिग्विजय करके लौटा तो दुर्योधन ने उसकी पीठ ठोककर कहा , “प्रतापी कर्ण ! जिस कार्य को बड़े-बड़े महारथी नहीं कर सकते वह तुमने करके दिखा दिया । अब दादा को तुम्हारा लोहा मानना ही होगा ।”

कर्ण के इस वीरतापूर्ण कार्य की माता गांधारी और धृतराष्ट्र ने भी मुक्त कण्ठ से सराहना की ।

दुर्योधन ने राजसूय-यज्ञ करने की ठानी और ब्राह्मणों को निमंत्रित किया; परन्तु ब्राह्मणों ने उन्हें आज्ञा नहीं दी। वे बोले, “महाराज ! अपने पिता के जीवित रहते आप राजसूय-यज्ञ करने के अधिकारी नहीं हैं। फिर आपके कुल के महाराज युधिष्ठिर सफल राजसूय-यज्ञ कर चुके हैं। ऐसी दशा में आपको विष्णु-महायज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए।”

दुर्योधन ने विष्णु-महायज्ञ का अनुष्ठान किया। पांडवों के पास भी निमन्त्रण-पत्र भेजा, परन्तु उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि वे लोग वनवास की स्थिति में नगर में, प्रवेश नहीं कर सकते।

दुर्योधन ने धूम-धाम के साथ यज्ञ सम्पन्न किया और ब्राह्मणों को खूब दान-दक्षिणा दी।

कर्ण, यज्ञ समाप्ति पर, दुर्योधन का अभिवादन करके बोला, “यह यज्ञ सम्पन्न हुआ दुर्योधन ! परन्तु मेरे मन को प्रसन्नता तभी होगी जब तुम पांडवों पर विजय प्राप्त कर राजसूय यज्ञ करोगे। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जबतक मैं अर्जुन को युद्ध-भूमि में परास्त कर उसका वध नहीं कर दूँगा तबतक मांस और मदिरा का सेवन नहीं करूँगा।”

कर्ण की प्रतिज्ञा को सुनकर दुर्योधन ने उसे छाती से लगा लिया और गदगद वाणी में बोला, “वीर कर्ण ! इस यज्ञ की पूर्ति का श्रेय तुम्हीं को है। मुझे विश्वास है कि राजसूय-यज्ञ की सफलता का श्रेय भी तुम्हीं प्राप्त करोगे। तुम्हारी प्रतिज्ञा निश्चित रूप से सफल होगी। यूँ तो हमारे पक्ष में कृप, द्रोण और भीष्म जैसे वीर विद्यमान हैं, परन्तु मेरा विश्वास एकमात्र तुम्हीं पर है।”

दुर्योधन के मुख से अपनी वीरता की प्रशंसा सुनकर कर्ण की छाती फूलकर गर्व से चौड़ी होगई।

पांडवों को दुर्योधन के यज्ञ की सफलता का समाचार मिला तो उनके हृदयों में अथाह पीड़ा हुई। भीम उत्तेजित होकर बोला, “यह यज्ञ बच्चों का खिलवाड़ मात्र है। वास्तविक यज्ञ तो अभी होना शेष है। वह यज्ञ समर-भूमि में होगा।”

अर्जुन उत्साहपूर्ण स्वर में बोले, “सुना है कर्ण ने युद्ध-भूमि में मुझे परास्त करने और मारने का व्रत लिया है।” इतना कहकर वह खिल-खिलाकर हँसपड़ा।

आज पाँचों भाई प्रातःकाल ही आखेट के लिए निकल गए।

पांचाली आश्रम में अकेली घूमरही थीं। पांचाली का सौंदर्य वन-स्थली में बिखर रहा था। वह जिधर भी जाती थीं वहाँ के वेल-वितान मुस्कराकर पुष्पित होउठते थे, और पक्षीगण कलरव करके मधुरस्वर में गाने लगते थे। वह विटपों के निकट जा-जाकर उनकी डालियाँ पकड़कर झूलउठती थीं। वह इस समय इस वन की रानी थीं। उसके संकेत पर वन-उपवन हिलते और खिलखिलाते थे। पत्ते ताल देते थे और शीतल समीर बहने लगती थी।

पांचाली ने देखा कि उनके पालित हरिणों के छौनों की कतार उसके समक्ष खड़ी थी। उन्होंने उन सबको कन्द-मूल-फल खिलाए और उनके साथ खेलती हुई आश्रम को भोंपड़ी के निकट आ गईं।

दुर्योधन का बहनोई जयद्रथ अपनी विशाल सेना के साथ शात्व देश जारहा था। वह ज्योंही आश्रम के समक्ष पहुँचा तो उसकी दृष्टि पांचाली पर पड़ी।

पांचाली के रूप को देखकर वह ठगासा रह गया। उसने अपना रथ रोक दिया और अपने दूत को उनके पास परिचय प्राप्त करने के लिए भेजा।

दूत पांचाली के निकट जाकर बोला, “अनुपम सुन्दरी ! तुम कौन हो ? तुम वन-देवी हो अथवा स्वर्ग से उतरी हुई अप्सरा ? मैं सिंधुराज श्री जयद्रथ का दूत हूँ। वह सामने सरोवर के निकट रथ पर बैठे हैं। मुझे उन्होंने आपका परिचय प्राप्त करने के लिए भेजा है।”

पांचाली ने उत्तर दिया, “मेरा नाम पांचाली है। श्रीजयद्रथ के लिए

मेरा इतना ही परिचय पर्याप्त होगा । मेरे पति अर्जुन अपने भाइयों के साथ आखेट को गएहुए हैं । श्री जयद्रथ से कहिए कि उनके लौटने पर उनका समुचित सत्कार कियाजाएगा ।”

दूत ने सिंधुराज जयद्रथ को जाकर पांचाली का परिचय दिया । जयद्रथ उनके रूप पर बुरी तरह आसक्त होचुका था । वह स्वयं आश्रम में चलाआया ।

पांचाली ने जयद्रथ को आसन दिया और बोलीं, “सिंधुराज ! आसन पर विराजें । धृतराष्ट्र हमारे पूज्य हैं । उनके जामात्र का समुचित सम्मान करना हमारा धर्म है । आप कंद-मूल-फलों का आहार करें तब तक पांडव भी आजाएँगे ।” यह कहकर उन्होंने एक कमल-पत्र पर कुछ कंद-मूल फल रखकर उनके समक्ष करदिए ।

लोलुप जयद्रथ वहाँ कंदमूल फल खाने नहीं गया था । वह बोला, “अपूर्व सुन्दरी ! मुझे तुम्हारे इन फलों की आवश्यकता नहीं है । मैं तुम्हारे रूप का पिपासू होउठा हूँ । तुम व्यर्थ इन कायर पांडवों के पास रहकर अपने अनुपम सौंदर्य को नष्ट कररही हो । मेरे साथ रथ पर बैठकर चलो और मेरे राज्य की साम्राज्ञी बनो । संसार में प्राणी सुख भोग करने के लिए आता है ।”

जयद्रथ की वासनापूर्ण छिछोरी बातें सुनकर पांचाली का रक्त उबाल खागया । उसके नेत्र अंगारों के समान दहकनेलगे । वह क्रुद्ध वाणी में बोलीं, “नर-पिशाच, पापी ! दूर हट मेरी दृष्टि के सामने से । मुझे आश्रम में अकेली देखकर तेरा इतना साहस होगया !”

पांचाली के क्रोधपूर्ण शब्दों का निर्लज्ज जयद्रथ पर कोई प्रभाव न हुआ । उसने पांचाली का वस्त्र पकड़कर उसे अपनी ओर खींचनाचाहा तो पांचाली ने पास में पड़े एक पाषाण से जयद्रथ पर प्रहार किया । जयद्रथ पृथ्वी पर गिरपड़ा और फिर सँभलकर उठा तो पांचाली ने उस पर दूसरा प्रहार किया ।

तब तक जयद्रथ के सेनिक वहाँ आगए । उन्हें देखकर पांचाली भयभीत होउठी ।

जयद्रथ सेनिकों से बोला, “इसे उठाकर मेरे रथ पर लेचलो ।” कहने की देर थी कि बहुत से सेनिकों ने झपटकर उन्हें उठालिया और जयद्रथ के रथ पर लेगए ।

पांचाली आर्तनादकर रोउठी ।

धौम्य जी ने पांचाली का आर्तनाद सुना तो वह दौड़कर घटना-स्थल पर आगए और क्रोधावेष में बोले, “कायर जयद्रथ ! तेरा इतना दुस्साहस ! यदि अपने प्राणों की रक्षा चाहता है तो पांचाली को रथ से नीचे उतारदे, वरना समझले कि आज मृत्यु तेरे शीर्ष पर मँडरारही है । पांडव आगए तो फिर तेरे प्राणों की कोई रक्षा नहीं करसवेगा ।”

जयद्रथ ने धौम्यजी की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया । वह अपने सारथी से बोला, “रथ आगे बढ़ाओ और पवन-वेग से रथ को राजधानी की ओर लेचलो ।”

रथ चलपड़ा । पांचाली रोती और विलाप करतीरही । धौम्यजी पागलों की तरह रथ के पीछे-पीछे दौड़पड़े ।

रथ अभी बहुत दूर नहीं गया था कि पांडव आश्रम पर आगए । आश्रम की एक वन-कन्या ने उनसे पांचाली-हरण की बात कही तो वे क्रोध में पागल होउठे ।

अर्जुन ने गांडीव सँभालकर देखा कि रथ दक्षिण-पथ की ओर जा-रहा था । उन्होंने एक वाण संधानकर रथ पर प्रहार किया । रथ खील-खील होकर बिखरगया । उनके दूसरे तीर ने रथ के दोनों घोड़ों को मृत्यु-लोक पहुँचादिया और तुरन्त वह अपने भाई भीम को साथ ले उस दिशा में दौड़पड़े ।

दोनों भाई शत्रु-सेना का संहार करतेहुए जयद्रथ के रथ के निकट जापहुँचे और भीम ने लपककर उसे उसके केशों से पकड़लिया । अर्जुन

के वाणों की तीव्र वर्षा के समक्ष सिंधराज की सेना भाग खड़ी हुई । उन्हें भागते देख वह भीम से बोले, “भय्या ! अब भागते सेनिकों का संहार बन्द करो इस पापी को भय्या युधिष्ठिर के समक्ष लेचलो ।”

भीम ने जयद्रथ को उसके केश पकड़कर घसीटते हुए लेजाकर महाराज युधिष्ठिर के चरणों में पटकदिया । पांचाली भी उनके साथ आश्रम को लौट आई ।

भीम क्रोध से उन्मत्त होउठे थे । वह अपने बड़े भाई युधिष्ठिर से बोले, “भय्या ! आज्ञा करो तो मैं इस दुष्ट को यमपुरी पहुँचाऊँ । पांचाली का अपमान करनेवाले इस पापी की लोक-लीला समाप्त करने को मेरे भुजदंड फड़करहे हैं ।”

इस गम्भीर परिस्थिति का अनुभवकर युधिष्ठिर बोले, “भीम ! कार्य जयद्रथ ने सचमुच ऐसा ही किया है कि इसे प्राण-दण्ड मिलना चाहिए, परन्तु हमारे समक्ष बहिन दुःशला के सुहाग का भी प्रश्न है । इस समय इसे शिक्षा देकर छोड़देना ही उचित है ।”

पांचाली के हृदय में अपने अपमान की भीषण ज्वाला सुलग रही थी, परन्तु उन्होंने महाराज युधिष्ठिर की गम्भीर बात पर ध्यान देकर कहा, “मैं ननदोई जी का स्वागत कर रही थी । इन्हें आसन देकर मैंने पत्तल में कंद-मूल-फल रखकर इन्हें खाने को दिए थे, परन्तु इन्हें अपनी यह दुर्दशा करानी ही अभीष्ट थी । इन्होंने अपनी कुबुद्धि का परिचय दिया, परन्तु हम अपनी सभ्यता को हाथ से नहीं जाने देंगे । यह सानंद अपने घर वापस जा सकते हैं । मैं धर्मराज के मत से सहमत हूँ ।”

जयद्रथ को बंधन-मुक्त कर दिया गया । धर्मराज युधिष्ठिर बोले, “जयद्रथ ! अपनी बुद्धि का सदुपयोग किया करो । भविष्य में कभी ऐसा घृणित करने की चेष्टा न करना ।”

जयद्रथ ग्लानिपूर्ण हृदय लेकर सिर नीचा किए वहाँ से चल दिया, परन्तु उसके चरित्र पर पांडवों के दया-भाव का कोई प्रभाव न पड़ा ।

उसके हृदय में पांडवों के प्रति द्वेष की ज्वाला और भी तीव्र वेग के साथ भड़क उठी। उसने अपने मन में यही कहा कि वह कभी-न-कभी अवसर मिलने पर अर्जुन से अपने अपमान का बदला अवश्य लेगा।

४

पांडवों के वनवास के बारह वर्ष व्यतीत हो गए। अब केवल एक वर्ष अज्ञात-वास का शेष था। इसे निर्विघ्न समाप्त करना तनिक कठिन कार्य था। क्योंकि यदि इस बीच में कौरवों को उनका पता चल जाता तो उन्हें फिर दुबारा बारह वर्ष के लिए वनवास में रहना पड़ता।

दुर्योधन के गुप्तचर उनके चारों ओर बिछे हुए थे और वे उनकी गति-विधियों पर दृष्टि रखे हुए थे।

एक दिन रात्रि को पांडव धौम्यजी को अपने आगामी पड़ाव की सूचना दे आश्रम से चल पड़े। किसी को कानों कान भी उनके प्रस्थान का पता न चला।

प्रातःकाल सब लोग सोकर उठे तो धौम्यजी ने आश्रमवासी ब्राह्मणों को द्वारिका जाने का परामर्श दिया और उन्हें विदा करके धौम्यजी ने पांडवों से उनके आगामी पड़ाव पर जाकर भेट की।

रात्रि को सब ने मिलकर विचार किया कि उन्हें यह एक वर्ष कहाँ बिताना चाहिए। धौम्यजी बोले, “आपका मत्स्य-देश के राजा विराट के यहाँ रहना उचित होगा, परन्तु यदि आप अपने इसी वेष में रहे तो रहस्य प्रकट हुए बिना न रहेगा। महाराज युधिष्ठिर चौपड़ खेलने में प्रवीण हैं और विराट को भी चौपड़ का बहुत शौक है। इसलिए इन्हें उनका मनोविनोद-कार्य करना चाहिए। यह अपना नाम कंक रख लें और इसी नाम से आप सब भी इन्हें पुकारें। भीम भोजन बनाने में दक्ष

हैं। इन्हें उनकी भोजनशाला में स्थान मिलजाएगा। इन्हें आप लोग 'वल्लभ' नाम से पुकारें। अर्जुन संगीत-कला में दक्ष हैं। यह संगीतज्ञ बनकर उनके दरबार में रहें और आप लोग इन्हें 'वृहन्नला' कहकर पुकारें। नकुल को 'ग्रन्थिक' के नाम से उनकी अश्वशाला में नौकरी करनी चाहिए। सहदेव को 'तन्त्रिपाल' नाम से उनके यहाँ पशु-चिकित्सा का कार्य सँभालना चाहिए। पांचाली को 'सौरिन्ध्री' नाम से रानियों के शृंगार का कार्य करना चाहिए।”

धौम्यजी की बात सबको पसन्द आई और वे मत्स्य देश की ओर चलपड़े।

कौरवों के दूत निराश होकर हस्तिनापुर लौट गए। जब उन्होंने इस प्रकार पांडवों के रात्रि में लापता होने का समाचार दुर्योधन को दिया तो वह क्रोधावेष में पागल हो उठा। उसे अपने दूतों पर बहुत क्रोध आया, परन्तु अब वह कर ही क्या सकता था? उसने तुरन्त अपने बहुत से दूत देश-विदेशों को पांडवों की खोज में भेजे।

पांडवों ने अपने वेश बदल लिए और गुप्त वेशों में मत्स्य-राज में पहुँचे। राजधानी निकट आ गई तो अस्त्र-शस्त्रों को छिपाने की समस्या सामने आई।

अर्जुन बोला, “सामने पर्वत-शिखर के पास जो श्यमशान दिखाई पड़ रहा है, उसी के किसी वृक्ष पर हमें अपने अस्त्र-शस्त्र छिपा देने चाहिए।”

अर्जुन का मत सब को पसन्द आया और एक वृक्षों के भुरमुट में बर्गद के पेड़ की खरकोडल में उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र छिपा दिए।

सर्वप्रथम युधिष्ठिर ने एक दीन ब्राह्मण के रूप में नगरी में प्रवेश किया। वह विराट की सभा में पहुँचे तो विराट ने उनका परिचय पूछा।

युधिष्ठिर बोले, “महाराज मेरा नाम कंक है। मुझे चौपड़ खेलने

का शौक है। मैं युधिष्ठिर के साथ चौपड़ खेलाकरता था, परन्तु जब से वह वनवास को चले गए तब से मेरा कोई ठिकाना न रहा।”

महाराज विराट ने उन्हें आदरपूर्वक अपने पास बिठाकर कहा, “आज से आप हमारे सखा हुए कंकजी ! आप सम्मानपूर्वक हमारे यहाँ रहें।”

युधिष्ठिर के पश्चात् भीम ने नगरी में प्रवेश किया। महाराज विराट ने उनका परिचय पूछा तो वह बोले, “महाराज मेरा नाम वल्लभ है। मैं पाक-विद्या में प्रवीण हूँ। पांडवों की रसोई-शाला का मैं प्रधान अधिकारी था और मुझे मल्ल-विद्या का भी शौक है। अवसर पड़नेपर मैं अपना कौशल दिखासकूँगा।”

विराट ने उन्हें अपनी पाकशाला का प्रधान सेवक नियुक्त कर दिया।

इनके पश्चात् पांचाली ने नगर में प्रवेश किया। महाराज ने उन्हें भी अपनी रानियों की सेवा में रखलिया।

अर्जुन ने नगर में प्रवेश किया और संगीतज्ञ के रूप में उन्हें भी विराट के दरबार में प्रतिष्ठा मिली। नकुल और सहदेव को भी उनके उपयुक्त कार्यों पर रखलिया गया।

सबको अपने-अपने अनुकूल कार्य मिल गया। पाँचों भाई तथा पांचाली समय-समय पर आपस में मिल भी लेते थे। वे अपने हर्ष-विशाद की बातें भी करलेते थे। इस प्रकार रहते-रहते चार मास व्यतीत हो गए।

विराटपुर में एक मेला लगता था। मेले की तय्यारियाँ होने लगीं। इस मेले में बड़े-बड़े पहलवान आते थे और अपने पराक्रम दिखाकर पुरस्कार प्राप्त करते थे।

इस वर्ष मेले में ‘जीवमृत’ नामक एक विख्यात पहलवान आया था। वह अपने सम्मुख किसी को कुछ नहीं समझता था। अखाड़े में उतरकर

उसने सब पहलवानों को हरादिया । तभी महाराज विराट को अपने रसोइए का स्मरण होआया ।

महाराज विराट ने वल्लभ को बुलाकर कहा, “वल्लभ ! यह ‘जीव-मृत’ पहलवान है । इसने सब पहलवानों को पछाड़दिया है । क्या तुम इससे लड़सकते हो ?”

महाराज की बात सुनकर उपस्थित जन-समूह खिलखिलाकर हँस पड़ा । भोम की दृष्टि उनपर गई तो वह अपने जोश को संवरण न कर सके । वह लंगोट कसकर अखाड़े में उतरपड़े और पहिले ही दाव पर उन्होंने ‘जीवमृत’ को चारोंखाने चित्त देमारा । उसकी हड्डी-पसलियाँ ढीली पड़गईं और उसमें उठकर खड़ाहोने की भी शक्ति न रही ।

विराट ने खड़े होकर वल्लभ को अपनी छाती से लगालिया और उसी दिन से उसका वेतन दुगना करदियागया ।

समय धीरे-धीरे और आगे बढ़ा । एक दिन विराट के सेनापति कीचक की दृष्टि पांचाली के रूप पर पड़गई । कीचक महाबली और विराट का साला था । कीचक के अन्य सम्बन्धी भी राज्य में बड़े-बड़े पदों पर आरूढ़ थे । शासन की बागडोर उन्हीं लोगों के हाथों में थी । स्वयं महाराज विराट भी कीचक की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते थे ।

कीचक ने एक दिन अपनी बहिन महारानी सुदेष्णा से कहा, “बहिन ! यह परम सुन्दरी दासी कौन है ? इसके रूप को देखकर मैं अधीर हो उठा हूँ । मैं इसके साथ विवाह करनाचाहता हूँ ।”

महारानी का उत्तर प्राप्त किएबिना ही वह सीधा पांचाली के समक्ष जापहुँचा और अपना प्रेम-प्रस्ताव उसके सामने रखदिया ।

पांचाली संयम के साथ बोलीं, “सेनापति ! आपको यह सब शोभा नहीं देता । एक तो मैं नीच जाति की दासी हूँ और दूसरे मैं विवाहित हूँ । मैं आपका प्रेम-प्रस्ताव स्वीकार करने के सर्वथा अयोग्य हूँ ।”

कीचक को पांचाली के उत्तर से संतोष न हुआ। वह बोला, “सुन्दरी ! रूप की कोई जाति नहीं होती। सौंदर्य वर्ण-मुक्त है। रूप को जाति के बंधन में बाँधना रूप का अपमान करना है। अब रही बात तुम्हारे विवाहित होने की सो ऐसे व्यक्ति को तुम्हारा पति बनने का कोई अधिकार नहीं जो तुम सरीखी सुन्दरी से दासी-कार्य कराए। उस पति को त्यागकर तुम मेरी हृदयेश्वरी बनो। मैं तुम्हें अपनी साम्राज्ञी बनाऊँगा।”

कीचकी की ये बातें सुनकर पांचाली का मुख क्रोध से तमतमा उठा। वह बोली, “पतिव्रता स्त्री के सम्मुख उसके पति की निंदा आपको नहीं करनी चाहिए सेनापति ! मेरे पति गुप्तरूप से हरसमय मेरे साथ रहते हैं। आप व्यर्थ उनके क्रोध के भोजन न बनें।”

दासी के मुख से ये अपमानपूर्ण शब्द सुनकर सेनापति कीचक धैर्य खो बैठा। वह अपनी बहिन के पास जाकर बोला, “बहिन ! मैं सौरिन्ध्री के बिना जीवित नहीं रहसकता। मैं इसे बल-प्रयोग से अपने वश में करसकता हूँ, परन्तु बल-प्रयोग से प्राप्त स्त्री के हृदय पर अधिकार नहीं होसकता। तुम इस कार्य में मेरी सहायता करो।”

बहिन बोली, “कीचक ! मैं तुम्हारे विचार से सहमत नहीं हूँ, परन्तु क्योंकि तुम मेरे भाई हो इसलिए एक उपाय बताती हूँ। तुम इसी पर्व के उपलक्ष में पकवान बनवाओ। मैं पकवान लाने सौरिन्ध्री को तुम्हारे पास भेजूँगी। तुम तब इसे अपनी वाक्-चातुरी से अपने वश में कर लेना।”

निश्चित समय पर कीचक ने पकवान और मदिरा का प्रबन्ध किया। रानी ने सौरिन्ध्री से कहा, “सौरिन्ध्री ! मुझे बड़ी भूख लगी है। तुम कुछ पकवान मेरे भाई कीचक के यहाँ से लेआओ।”

सौरिन्ध्री महारानी की बात सुनकर थरथरा उठी। वह बोली, “महारानी जी ! मुझसे आप जो सेवा चाहें लेलें, परन्तु एकांत में

सेनापति के महल में जाने की आज्ञा न करें। वह मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहते हैं। मेरे वहाँ जाने पर अनर्थ होने का भय है।”

महारानी आश्वासन देकर बोलीं, “सौरिन्ध्री ! मेरे रहते तुम्हारा अपमान करने का साहस किसी में नहीं है। तुम निर्भय होकर जाओ।”

उसे विवश होकर वहाँ जाना पड़ा। कीचक उसकी प्रतीक्षा में बैठा था। वह उसे अपनी ओर खींचने लगा।

पांचाली चिल्लाकर बोली, “सेनापति कीचक ! मेरे साथ बल-प्रयोग न करो। मेरे पति आगए तो फिर कोई तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा। बहुत बड़ा अनर्थ होजाएगा।”

कीचक अंधा होगया था। उसने कहा, “सुन्दरी ! मैं तुम्हारे पति से भयभीत होनेवाला नहीं हूँ। मैं तुम्हारी कृपा को प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम्हारा एक संकेतमात्र तुम्हें दासी से रानी बनासकता है। समझ-दारी से काम लो सौरिन्ध्री !”

पांचाली के हृदय में कीचक के शब्द सुनकर असीम पीड़ा होउठी। वह इस अपमान से पागल सी होगई। कीचक ने उन्हें अपनी बाहुओं में आबद्ध करना चाहा तो उन्होंने उसे धक्का दे दिया। कीचक पलंग पर गिरपड़ा और वह दरबार की ओर भागखड़ीहुई।

कीचक पांचाली को भागते देखकर उसके पीछे-पीछे भागलिया। दरबार में जाकर उसने पांचाली के केश पकड़ लिए और लात धूसों से उसे पीटता चला गया।

सौरिन्ध्री महाराज विराट के समक्ष रोककर करुण वाणी में बोली, “महाराज ! क्या आपका न्याय यही है कि आपके दरबार में एक अबला पर इस प्रकार अत्याचार हो ?”

कीचक का विरोध करने का साहस विराट में नहीं था। वह बातें बनाकर बोले, “सौरिन्ध्री ! जब तक मुझे यह न ज्ञात हो कि दोष किस का है, तो मैं क्या न्याय करूँ ?”

वल्लभ का रक्त यह देखकर उबाल खाने लगा, परन्तु कंक ने आँखों के संकेत से उसे शांत कर दिया। वह गम्भीर वाणी में बोले, “सौरिन्ध्री तुम्हें इस प्रकार दरबार में नहीं आना चाहिए था। तुम महारानी के पास जाओ। कीचक से इस अन्याय का बदला तुम्हारे पति लेंगे। तुम्हें भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।”

सौरिन्ध्री ने रनिवास में जाकर महारानी को यह संवाद सुनाया तो रानी को अपने भाई की नीचता पर महान् पश्चाताप हुआ। वह सौरिन्ध्री को धैर्य बँधाकर बोलीं, “बेटी सौरिन्ध्री ! तुम जाकर सो जाओ। तुम जो दण्ड कहो, वही मैं कीचक को दिलाऊँगी।”

सौरिन्ध्री बोली, “महारानी जी ! मेरे अपमान का बदला मेरे पति स्वयं ले लेंगे। वह कीचक से बहुत बलवान हैं। इसके लिए आपको कष्ट नहीं करना होगा।”

जब सब सो गए तो पांचाली भीम के पास पहुँचीं। भीम जागरहे थे। उनके हृदय में कीचक के प्रति ज्वाला सुलग रही थी। उनके नेत्रों का वर्ण लाल हो उठा था।

भीम की दशा देखकर द्रौपदी समझ गई कि उनके अपमान की जलन उनके हृदय में भी कम नहीं थी। वह मौन जाकर भीम के समक्ष खड़ी होगई।

भीम उन्हें सांत्वना देकर बोले, “पांचाली ! तुम्हारा अपमान करने-वाला कल रात तक जीवित नहीं रह सकता। तुम किसी प्रकार उसे नगर बाहर वाली नाट्यशाला तक ले आना।”

भीम के शब्द सुनकर द्रौपदी के विदग्ध हृदय को सांत्वना मिली। वह चुपके से अपने शयनागार में चली गई।

दूसरे दिन अवसर देखकर वह कीचक से मिलीं तो उसने फिर अपना वही प्रेम-प्रलाप प्रारम्भ किया।

सौरिन्ध्री बोली, “यहाँ आपसे बातें करने में मुझे लज्जा आती है सेनापति ! यदि आप वास्तव में मुझे चाहते हैं तो रात्रि को नाट्यशाला के एकान्त में मिलिए । आपसे सब बातें वहाँ एकान्त में निश्चित होने पर ही मैं अपने पति को छोड़सकती हूँ ।”

कीचक सौरिन्ध्री का प्रस्ताव सुनकर प्रसन्नता से फूलउठा । वह रात्रि की बड़ी उत्कंठा से प्रतीक्षा करने लगा । रात्रि होने पर उसने सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अपने रूप को निखारा और अकेला ही नाट्यशाला की ओर चलपड़ा ।

सौरिन्ध्री ने भीम को दिन में ही यह सब सूचना देदी थी । भीम वहाँ पहिले ही सौरिन्ध्री की साड़ी पहिनकर जाबैठा था ।

कीचक ने दूर से देखा कि सौरिन्ध्री वहाँ बैठी थी । वह पागल की भाँति उसके आलिंगन को दौड़पड़ा । भीम ने कीचक को अपने पास आते ही अपनी विशाल भुजाओं में जकड़लिया । भीम ने भींचकर उसकी पसलियाँ तथा हाथ-पैर तोड़ डाले और सौरिन्ध्री को दिखादिया । कीचक को मृतक देखकर पांचाली ने संतोष की स्वाँस ली ।

कीचक की मृत्यु का समाचार समस्त नगरी में फैलगया । कीचक के बन्धुबाधवों ने निश्चय किया कि कीचक के शव के साथ सौरिन्ध्री को भी बाँधदियाजाए, क्योंकि उसी के पति ने कीचक की हत्या की है ।

सौरिन्ध्री को बलपूर्वक कीचक के शव के साथ बाँधदियागया । यह देखकर भीम तिलमिलाउठा । उसने किसी से कुछ नहीं कहा और वह कीचक की अर्थी के श्मशान में पहुँचने से पूर्व ही श्मशान में जापहुँचा । भीम ने तालाब से पोतनी मिट्टी निकालकर अपने सारे अंग से लपेटली और कीचक की अर्थी की प्रतीक्षा करने लगा ।

थोड़ी देर में अर्थी श्मशान में आगई और कीचक के शव को सौरिन्ध्री के साथ चिता पर रखदियागया । चिता में अग्नि प्रज्वलित करने की तय्यारी होनेलगी ।

भीम ने यह देखकर एक ताड़ का वृक्ष उखाड़ा और वह उसे लेकर कीचक के बन्धुओं पर टूटपड़ा। भीम ने सब को मार-मारकर भूमि पर बिछादिया तथा उनमें से कुछ नगरी की ओर भाग गए।

भीम ने पांचाली को कीचक के शव से खोलकर पृथक खड़ा कर-दिया और उसके अन्य मृतक भाइयों को चिता पर रखकर अग्नि प्रज्वलित करदी।

इस घटना का समाचार विराट-नगरी में पहुँचा तो आतंक छागया। महाराज विराट भी सौरिन्ध्री के पति से भयभीत होउठे। उन्होंने सौरिन्ध्री को अपने रनिवास की सेवा से मुक्त करने का निश्चय किया।

महाराज विराट ने अपना यह निश्चय सौरिन्ध्री को सुनाया तो वह करुणाद्र स्वर में बोली, “महाराज ! मेरे पति कभी कोई अनीतिपूर्ण कार्य नहीं करसकते। आपने मुझे सुरक्षा प्रदान की है, तो मेरे पति सर्वदा गुप्त रूप में आपकी रक्षा करेंगे।”

सौरिन्ध्री की यह बात सुनकर महारानी बोली, “महाराज ! यदि यही बात है तो सौरिन्ध्री को यथास्थान बनी रहने दीजिए। मेरे भाई कीचक को सौरिन्ध्री के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए था। उसने और उसके भाइयों ने अपने कुकृत्य का फल भोगा है। इसमें सौरिन्ध्री का कोई दोष नहीं।”

महारानी की बात सुनकर महाराज विराट ने सौरिन्ध्री को महारानी की सेवा में बनीरहने की आज्ञा प्रदान की।

५

पांडवों के वनवास का यह तेरहवाँ वर्ष पूर्ण होचला था और दुर्योधन को उनका कहीं पता न चला। उसके दूतों ने देश-विदेश सब छानमारे परन्तु पांडवों का पता न लगासके। वे जहाँ भी गए, उन्हें

निराश ही लौटना पड़ा। दूत हताश होकर बोले, “महाराज ! हमने नगर, पर्वत, वन, तीर्थ और देशों का कोना-कोना छानमारा परन्तु पांडवों का हमें कहीं खोज नहीं मिला।”

दुर्योधन को उसके एक दूत ने सूचना दी कि मत्स्य-राज्य में उनके सेनापति कीचक का वध हुआ है। कुछ दिन पूर्व वहाँ ‘जीवमृत’ पहलवान को भी पछाड़ा गया था। हों-न-हों पांडव गुप्त रूप में मत्स्य-राज्य में ही कहीं छिपे हैं।

यह सुनकर सुशर्मा बोला, ‘महाराज कीचक की मृत्यु होजाने से मत्स्य-राज्य अनाथ होगया है। आप उसपर आक्रमण करेंगे तो आपको अपनी शक्ति के संगठन करने के लिए बहुत बड़ी सम्पत्ति हाथ आएगी।’

दुर्योधन ने सुशर्मा को सेनापति बनाकर मत्स्य-देश पर चढ़ाई करा दी। भीष्म ने व्यर्थ किसी देश पर आक्रमण करने की अनुमति नहीं दी, परन्तु दुर्योधन ने उनकी बात न मानी।

सुशर्मा ने विराट-नगर पर आक्रमण करदिया और उनकी गौशाला को अपने अधिकार में लेलिया।

इस आक्रमण को देखकर महाराज विराट भयभीत होउठे। उन्हें अब कीचक की याद आई।

उन्हें व्याकुल देखकर कंकजी बोले, “महाराज ! भयभीत न हों। इस सेना को पराजित करने के लिए अकेला वल्लभ पर्याप्त हैं।”

महाराज विराट ने सेनापति को सेना तय्यार करने का आदेश दिया। कंक, वल्लभ, तंत्रिक और ग्रंथिक भी चार रथों पर चढ़कर युद्ध के लिए उद्यत होगए। घमासन युद्ध हुआ। चाँदनी रात में युद्ध हो-रहा था।

युद्ध में विराट का सारथी मारा गया और सुशर्मा ने विराट को बाँधकर अपने रथ पर डाललिया। यह देखकर युधिष्ठिर अधीर हो

उठे। वह भीम से बोले, “भीम ! इस समय हमें महाराज विराट की रक्षा करनी होगी। भले ही हमारा गुप्त वेष प्रकट होजाए। तुम सुशर्मा पर आक्रमण करके विराट को बन्धन-मुक्त करो।”

युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्तकर भीम ने अपना रथ सुशर्मा की ओर मोड़दिया और एक ही वार में सुशर्मा के रथ को खंड-खंडकर करके विराट को बन्धन-मुक्त करदिया। उन्होंने सुशर्मा को बाँधकर युधिष्ठिर के सम्मुख प्रस्तुत करदिया।

युधिष्ठिर बोले, “महाराज विराट से अनेकों वार हारकर भी तुमने विराट-राज्य पर आक्रमण किया। जाओ भविष्य में कभी ऐसा करने का साहस न करना।”

महाराज विराट को अपनी इस विजय पर हार्दिक प्रसन्नता हुई; परन्तु ज्योंही वह दरबार में पहुँचे तो उन्हें पताचला कि कौरव-सेना ने उनपर आक्रमण करदिया है। यह समाचार प्राप्त कर वह फिर भय-भीत होउठे।

युवराज उस समय रनिवास में थे। उन्हें कौरवों के आक्रमण का पता चला तो वह बोले, “कोई अच्छा सारथी होता तो मैं आज कौरवों को उनकी दुष्टता का आनंद चखा देता।”

सौरिन्ध्री यह सुनकर मुस्करादी। वह युवराज की बहिन उत्तरा से बोलीं, “युवराज ! वृहन्नला को सारथी बनाकर अपने साथ चलने को कहो। उन्होंने कई बार अर्जुन का रथ हाँका है। वह धनुर्विद्या में भी कुछ कम प्रवीण नहीं हैं। उन्हें आप कोरा संगीतज्ञ ही न समझें।”

राज्य पर विपत्ति के बादल मँडरातेदेखकर उत्तरा ने सौरिन्ध्री की बात युवराज से कही तो युवराज हँसकर बोले, “यह उपहास का समय नहीं है उत्तरा ! वृहन्नला का युद्ध से क्या सम्बन्ध ?”

उत्तरा बोली, “भय्या ! सौरिन्ध्री झूठ नहीं बोलसकती। मैं अभी

जाकर वृहन्नला को आपका रथ जोतने के लिए आदेश देती हूँ। वह मेरी बात को कभी नहीं टालसकते।”

वृहन्नला युवराज से बोले, “चलिए युवराज ! उत्तरा का कहना मैं कैसे टालसकता हूँ ?”

युवराज बोले, “तुम मुझे रणस्थल में पहुँचादो वृहन्नला ! फिर देखना मैं कौरवों को कैसी शिक्षा देता हूँ। अभी उनका वीरों से पाला ही नहीं पड़ा है। शीघ्रता करो। मेरे भुजदण्ड उनके विनाश के लिए फड़करहे हैं।”

वृहन्नला और सौरिन्ध्री हँसकर बोले, “युवराज ! शीघ्रता करें चलने को रथ तय्यार है।”

सेवक-गण युवराज के अस्त्र-शस्त्र और कवच उठालाए। बेचारे युवराज को तय्यार होनापड़ा।

वृहन्नला ने कवच पहिना तो रनिवास की सब रानियाँ हँसपड़ीं।

युवराज का रथ रणस्थल में पहुँचा और उनकी दृष्टि सामने खड़ी कौरव-सेना पर पड़ी तो उनके होश उड़गए। वह भयभीत होकर वृहन्नला से बोले, “वृहन्नला मुझे वापस लेचलो। इतनी बड़ी सेना के साथ मैं युद्ध नहीं करसकता। तुम मुझे सकुशल घर पहुँचादो तो मैं तुम्हारा जीवनभर आभारी रहूँगा। मैं तुम्हें मुँह माँगा पुरस्कार दूँगा वृहन्नला !”

वृहन्नला लौटने को उद्यत न हुए तो युवराज रथ से उतरकर विराटनगरी की ओर भागलिए। वृहन्नला ने दौड़कर उन्हें पकड़-लिया और रथपर बिठाकर बोले, “घबराओ नहीं युवराज ! तुम रथ हाँको और मैं युद्ध करूँगा। तुम रथ को पहिले उस वृक्ष के नीचे लेचलो।”

वृहन्नला की यह गम्भीर वाणी सुनकर युवराज को तनिक धैर्य बँधा। वृहन्नला ने वृक्ष पर चढ़कर उसकी खरकोडल से अस्त्र-सस्त्र और

कवच निकाले। अपने अस्त्र-शस्त्रों और कवच से सुगज्जित होकर अर्जुन रथ पर बैठे तो उन्हें आज अपने अन्दर एक नवीन स्फूर्ति दिखाई दी।

कौरवों की दृष्टि अर्जुन पर पड़ी तो उनके छक्के छूट गए। दुर्योधन प्रसन्न होकर भीष्मपितामह से बोले, 'दादा ! इस आक्रमण ने पांडवों को समय से पूर्व ही प्रकट होने पर विवश कर दिया। अब इन्हें दुबारा बारह वर्ष के लिए वनवास जाना होगा।'

भीष्म पांडवों के वनवास का हिसाब लगाकर बोले, "आज पाँच महीने छे दिन तेरह वर्ष से ऊपर हो चुके दुर्योधन ! अब तुम्हें व्यर्थ यहाँ इन विराट की गायों के पीछे युद्ध नहीं ठानना चाहिए। अर्जुन के समक्ष हमारी विजय सम्भव नहीं है।"

कर्ण पितामह की बात सुनकर बोला, "पितामह ! यह आप पांडवों की ही प्रशंसा करते हैं। आज मेरे भी तो जौहर देखिए। मैंने अर्जुन को मैदान से भगा न दिया तो मेरा नाम कर्ण नहीं।"

कर्ण की गर्वोक्ति कृप, भीष्म और अश्वस्थामा को भली नहीं लगी। अश्वस्थामा बोला, "कर्ण ! यह तर्क-वितर्क का समय नहीं है। छल-प्रपंच से तुम लोगों ने पांडवों को कष्ट पहुँचा लिया। धर्म-युद्ध में तुम अर्जुन पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते। आज अवसर समक्ष है। देखेंगे तुम्हारे अन्दर कितना पराक्रम है। हम पारिवारिक विग्रह नहीं चाहते परन्तु तुम, हमें दिखता है कि कुरुकुल का सर्वनाश कराकर ही दमलोगे। दुर्योधन की बुद्धि को तुमने भ्रष्ट कर दिया है।"

कर्ण गर्व-पूर्ण स्वर में बोला, "अश्वस्थामा ! समस्भूमि में आकर तुम्हें ये कायरतापूर्ण धर्म-उपदेश सुनाना शोभा नहीं देता। क्या तुम चाहते हो कि हम अर्जुन की सूरत देखकर यहाँ से भाग खड़े हों।"

भीष्म ने जब देखा कि युद्ध करना ही होगा तो उन्होंने दुर्योधन को गऊओं के साथ प्रथक कर दिया। द्रोणाचार्य को बीच में करके अश्वस्थामा को बाँई तथा कृपाचार्य को दाँई ओर कर मोर्चा सँभालने के

लिए कहा। फिर कर्ण से बोले, “कर्ण तुम आगे बढ़कर आक्रमण करो।” वह स्वयं उसके पीछे उसकी रक्षा के लिए रहे।

आज तेरह वर्ष पश्चात् द्रोणाचार्य ने अर्जुन को देखा तो उनके हृदय में अनुराग जाग्रत होउठा। वह बोले, “महामना भीष्म ! देखो महावीर अर्जुन कैसा प्रलयंकर रूप धारण किएहुए बढ़ता चला आरहा है।”

उसी समय अर्जुन के तीर आए और द्रोणाचार्य के दोनों पैरों के पास आकर गिरे। उनका हृदय गद्गद होउठा। तभी दो बाण द्रोणाचार्य के दोनों कानों के पास से सनसनाते हुए निकलगए। द्रोण बोले, “अर्जुन के दो बाण जो मेरे पैरों के पास गिरे हैं, उनके द्वारा अर्जुन ने प्रणाम किया है और जो दो तीर मेरे कानों के पास से गए हैं उनके द्वारा अर्जुन ने कुशल-क्षेम पूछा है।”

भीम बोले, “आचार्य द्रोण ! आज अर्जुन के समक्ष देखकर हृदय गर्व से फूलउठा है।”

अर्जुन ने दूर से देखा कि सेना में दुर्योधन नहीं था। उन्होंने दूर दृष्टि फैलाई तो उन्हें धूल उड़ती दिखाईदी। वह समझगए कि दुर्योधन गायों को लिए सेना के साथ चला जा रहाथा। वह युवराज से बोले, “रथ उस ओर दौड़ाकर लेचलो। हमारा उद्देश्य सेना का वध करना नहीं, अपनी गऊओं की रक्षाकरना है।”

अर्जुन का रथ तीव्रगति से उसी ओर को बढ़चला। अर्जुन ने दुर्योधन पर तीव्र बाणों की वर्षा करके उससे सब गाएँ छीनलीं और ग्वालों से बोले, “तुम लोग अपनी गायों को नगर की ओर लेजाओ।”

अर्जुन को दुर्योधन की ओर बढ़ते देखकर कर्ण तीव्र गति से बीच में आगया। अर्जुन ने दुर्योधन की दिशा में बढ़ना छोड़कर पहिले कर्ण से मुठ-भेड़ की। अर्जुन ने देखते-ही-देखते कर्ण को रथ से नीचे गिरादिया और उसके भाई अधिरथ के पुत्र को यमपुरी पहुँचादिया।

भाई की मृत्यु से उत्तेजित होकर कर्ण ने भीषण युद्ध किया, परन्तु अर्जुन के वाणों ने कर्ण के बदन को छलनी बनादिया। वह अपने प्राण लेकर भागखड़ा हुआ।

कर्ण को भागते देखकर दुर्योधन अर्जुन पर दूटपड़ा। अर्जुन ने उसे भी घायल करदिया और फिर कृपाचार्य पर आक्रमण किया। अर्जुन के तीरों से बिंधकर कृपाचार्य के रथ के घोड़े रथ को लेकर भाग खड़े हुए और कृपाचार्य भूमि पर गिरपड़े।

अर्जुन ने फिर अपना रथ द्रोणाचार्य की ओर मोड़दिया। गुरु और शिष्य का घमासान युद्ध हुआ। अर्जुन ने द्रोणाचार्य के रथ को वाणों की वर्षा करके चारों ओर से ढकदिया। यह देखकर अश्वस्थामा अर्जुन पर दूटपड़ा, परन्तु अर्जुन के एक ही तीर ने अश्वस्थामा के सब अस्त्र-शस्त्रों को विफल करदिया।

कर्ण एक बार फिर साहस करके अर्जुन के सम्मुख आया। अर्जुन ललकार बोले, “नीच कर्ण ! तू एक बार पीठ दिखाकर फिर मेरे समक्ष आया। तूने ही हमारे वंश में पारस्परिक फूट का बीज बोया है। आज तुझे तेरे कुकर्मों का फल चखाकर ही दमलूँगा।”

कर्ण उत्तेजित होकर गरजते हुए बोला, “व्यर्थ का प्रलाप बन्द कर अर्जुन ! और सामने आ। आज तेरा छठी तक का खाया-पीया न निकाल दिया तो मेरा नाम कर्ण नहीं।”

दोनों में घमासान युद्ध प्रारम्भ होगया। अर्जुन के वाणों ने कर्ण के अस्त्र-शस्त्रों को काटकर उसके रथ को नष्ट कर, उसे भूमि पर पटकदिया। कर्ण अपने प्राणों की रक्षा के लिए फिर मैदान से भाग खड़ा हुआ।

अंत में जब कौरव-पक्ष के सब योद्धा भाग गए तो भीष्म ने अर्जुन से मोर्चा लिया। पितामह अर्जुन की तीव्र वाण-वर्षा के समक्ष मूर्छित होकर रथ पर गिरपड़े।

तब कौरवों ने धर्माधर्म का विचार छोड़कर एक साथ मिलकर अर्जुन पर आक्रमण किया तो अर्जुन ने एक ऐसा वाण चलाया कि जिससे कौरवों की सारी सेना मूर्छित होकर भूमि पर गिरपड़ी।

बहुत देर पश्चात् जब दुर्योधन सचेत हुआ तो बोला, “दौड़ो-दौड़ो सैनिकों ! अर्जुन सब गऊओं को ले गया।”

भीष्म हँसकर बोले, “दुर्योधन ! अब क्यों व्यर्थ प्रलाप करते हो। यही खर मनाओ कि वह हमें जीवित छोड़ गया। वह चाहता तो हम सबके सिर उतारकर लेजाता। अर्जुन पर विजय प्राप्त करना तुम्हारे लिए असम्भव है। वह धर्म-युद्ध करनेवाला वीर है। केवल इसीलिए उसने मूर्छित पड़ों पर प्रहार नहीं किया। अब अपनी बची-कुची मर्यादा को लेकर चुप-चाप हस्तिनापुर लौटचलो।”

विवश होकर दुर्योधन को पितामह की आज्ञा का पालन करना पड़ा और कौरव-सेना खाली हाथों हस्तिनापुर को लौट गई।

अर्जुन मार्ग में युवराज उत्तर से बोला, “युवराज ! नगर में मेरा परिचय न देना। कहना कि युद्ध में तुम्हारे ही पराक्रम से विजय प्राप्त हुई है।”

युवराज बोला, “महात्मन् ! यह कार्य मेरे लिए नितान्त असम्भव था। आपका श्रेय मैं अपने ऊपर कदापि नहीं लेसकता।”

विराट-नगर में उत्तर की विजय का समाचार फैल गया। महाराज विराट को यह समाचार मिला तो वह गद्गद हो उठे।

विराट भरी सभा में जब अपने पुत्र की प्रशंसा करने लगे तो कंकजी चुप न रह सके। वह बोले, “महाराज ! वृहन्नला, जिसका सारथी हो वह कभी पराजित नहीं होसकता।”

विराट को कंकजी की यह बात भली न लगी। वह फिर अपने ही पुत्र की प्रशंसा करने लगे। कंकजी फिर बोले, “महाराज ! वृहन्नला उत्तर के साथ न होता तो उत्तर का समर-भूमि से सकुशल लौटना असम्भव था।”

यह सुनकर महाराज विराट क्रोधित होउठे। वह क्रुद्ध स्वर में बोले, “कंकजी ! आप हमारे नौकर होकर हमारे पुत्र की प्रशंसा तो करते नहीं, वृहन्नला की प्रशंसा कर रहे हैं।” यह कहकर उन्होंने पासा उठाकर कंकजी के मुखपर देमारा। उसकी चोट से कंकजीकी नाक से रक्त बह चला।

उसी समय युवराज उत्तर राज्य-सभा में आगए और उन्होंने कंकजी की नाक से रक्त बहता देखकर अपने पिताजी से पूछा, “पिताजी ! कंकजी की नाक से रक्त कैसे बहरहा है ?”

महाराज विराट बोले, “बेटा ! मैं तुम्हारी विजय की प्रशंसा कर रहा था। कंकजी बोले कि यदि वृहन्नला तुम्हारे साथ न होता तो तुम्हारा युद्ध-भूमि से लौटना असम्भव था। मुझे यह सुनकर क्रोध आ गया और मैंने पासा उठाकर इनके मुँह पर देमारा।”

यह सुनकर युवराज उत्तर को हार्दिक खेद हुआ। वह अपने पिता महाराज विराट से बोला, “महाराज ! आपने बहुत बड़ी भूल की। जिन्हें आप कंकजी, दीन ब्राह्मण, समझ रहे हैं यह धर्मराज युधिष्ठिर हैं, जिन्हें आप वृहन्नला समझते हैं वह धनुर्धर अर्जुन हैं, जिन्हें आप बल्लभ समझते हैं वह महाबली भीम हैं, जिन्हें आप सौरिन्ध्री समझते हैं वह द्रोपद नगर की राजकुमारी पांचाली हैं। इसी प्रकार ग्रंथिक नकुल हैं तथा तंत्रीपाल सहदेव हैं।”

यह सुनकर महाराज विराट चकित रहगए और उन्हें अपने व्यवहार पर हार्दिक पश्चाताप हुआ। उनके नेत्र डबडबाआए और वह महाराज युधिष्ठिर से लिपटकर रोपड़े। वह गद्गद् स्वर में बोले, “धर्मराज ! गत एक एक वर्ष में अनजाने में मुझसे जो भी भूलें हुईहों, उन्हें क्षमाकरना।”

महाराज युधिष्ठिर बोले, “महाराज विराट ! आपने हमें अपने यहाँ आश्रय देकर हमारे ऊपर महान् उपकार किया है। यदि हमें आपका आश्रय

न मिलता तो यह एक वर्ष गुप्त रहकर काटना हमारे लिए दुष्कर हो जाता। आपकी कृपा से वह वर्ष सकुशल कटगया। अब हम अधिकार-पूर्वक कौरवों से अपना राज्य वापस माँगसकते हैं और उनके न देनेपर धर्म-युद्ध की घोषणा करसकते हैं।”

महाराज विराट अपना राज्य-सिंहासन छोड़कर एक ओर खड़े हो गए और धर्मराज युधिष्ठिर से करबद्ध प्रार्थना की कि वह उनके सिंहासन पर बैठकर उसे पवित्र करें।

पांडवों के रहस्य का उद्घाटन हुआ तो विराट-नगरी में आनन्द की लहर दौड़ गई। महाराज विराट ने अपने नगर को अलंकृत कराकर एक उत्सव का आयोजन किया और पाँचों पांडवों तथा पांचाली का उसमें राज्योचित सम्मान किया गया।

महाराज विराट की पत्नी ने पांचाली को अपनी छाती से लगाकर अपने भाई कीचक तथा उसके अन्य सम्बन्धियों के नीच कृत्य की क्षमा-याचना की।

महाराज विराट बोले, “धर्मराज ! यों तो महाराज पांडु की विराट-राज्य पर पहिले से ही महान् अनुकम्पा रही है, परन्तु अब मैं चाहता हूँ कि हमारा पारस्परिक सम्बन्ध और भी दृढ़ होजाए। क्या इसके लिए आप कोई सुभाव प्रस्तुत करने की कृपा करेंगे ?”

महाराज युधिष्ठिर सहर्ष बोले, “आपकी आकांक्षा को फलीभूत करने के लिए मैं चाहता हूँ कि आप अपनी पुत्री उत्तरा के विवाह का आयोजन हमारे छोटे भाई अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ करें। यदि इसमें आपको कोई आपत्ति न हो तो हम श्री कृष्ण के पास यह शुभ समाचार भेज दें। अभिमन्यु और उसकी माता सुभद्रा आजकल द्वारिका-पुरी में ही हैं।

धर्मराज युधिष्ठिर की बात सुनकर महाराज विराट को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह सहर्ष बोले, “धर्मराज ! आपने मेरे मुख की बात मुझसे छीनली।

प्रतापी धनंजय के सुपुत्र को अपने जामात्र के रूप में ग्रहणकर मेरा जीवन सफल होगा ।”

महाराज विराट की स्वीकृति प्राप्तकर पांडवों ने यह शुभ समाचार द्वारिकापुरी में श्रीकृष्ण के पास भेजदिया और प्रार्थना की कि वह तथा बलरामजी अभिमन्यु की बारात लेकर विराट नगरी में पधारें ।

पांडवों ने अभिमन्यु के विवाह का शुभ समाचार अपने सभी मित्रों को भेजा और उनसे विवाह में सम्मिलित होने की प्रार्थना की ।

अभिमन्यु के विवाह का आयोजन विराट-नगरी में बड़ी धूमधाम के साथ हुआ । पांडवों के सभी सम्बन्धी तथा मित्र विराट-नगरी में पधारे । श्रीकृष्ण और बलराम बारात का आयोजन कर निश्चित समय पर आगए । काशिराज तथा शिवराज भी अपने इष्ट-मित्रों के साथ विवाह में सम्मिलित हुए । पांचाली के पिता, धृष्टद्युम्न और शिखंडी पांचाल देश से पधारे । विराट-नगरी की शोभा चौबाला होउठी । मंगल-गीतों से वहाँ का वातावरण लहराउठा । उल्लास और आनन्द की सरिता बहचली ।

यथा समय वैदिक रीति से विवाह सम्पन्न हुआ । उत्तरा ने अभिमन्यु के गले में जयमाला डाली और बन्दीजनों की विरुदावली सँचारों दिशाएँ गूँजउठीं ।

पांडवों को महाराज विराट ने अमूल्य रत्न, धन और ग्राम देकर उनका सत्कार किया । कर्मचारियों को मुँहमंगे पुरस्कार दिए और ब्राह्मणों को मुक्त हृदय से दान देकर विदाकिया ।

धर्मराज युधिष्ठिर और महाराज विराट परस्पर गले मिले और दोनों राज्यों के स्थायी सम्बन्ध स्थापित होगए ।

पांडवों के तेरह वर्ष के वनवास का कष्ट आज इस शुभ विवाह ने विस्मृत करदिया । पांडवों के जीवन में नवीन उल्लास का उदय हुआ । उनके जीवन में एक नवीन ज्योति जाग्रतहुई ।

पांडवों ने एक विराट राजसभा का आयोजन किया। अभिमन्यु के विवाहोत्सव में पांडवों के सभी हितैषी उपस्थित हुए थे। इसलिए वही समय उन्होंने उस सभा के लिए उपयुक्त समझा।

श्रीकृष्ण सभा के समक्ष गम्भीर वाणी में बोले, “उपस्थित महानुभावो ! आप सबको दुर्योधन द्वारा छल-बल से पांडवों का राज्य हड़प-लेने का समाचार विदित है। उसे फिर से दुहराना व्यर्थ है। आज उस घटना को तेरह वर्ष और सात माह व्यतीत होचुके। पांडवों ने अपनी वनवास की अवधि विधिवत समाप्त करली है। अब कौरवों को पांडवों का आधा राज्य शांतिपूर्वक लौटा देना चाहिए। हमारे समक्ष कौरव और पांडव दोनों समान हैं। हम नहीं चाहते कि पारिवारिक कलह हो और इस कुल की मर्यादा को ठेस लगे।

कृप, द्रोण, भीष्म और धृतराष्ट्र की न्यायप्रियता में हमें कोई संदेह नहीं परन्तु दुर्योधन अन्याय के पथ पर चल रहा है। वह पांडवों का राज्य वापस करने को उद्यत नहीं है।

हम रक्तपात नहीं चाहते। परन्तु यदि दुर्योधन सद्मार्ग पर न आया तो रक्तपात अवश्य होगा। उसे कोई रोक नहीं सकता। अधर्म को सहन नहीं किया जाएगा। पांडव अधर्म और अन्याय के समक्ष झुकनेवाले नहीं हैं।

हमें हस्तिनापुर दूत भेजकर ज्ञात करना होगा कि वे न्याय से पांडवों का राज्य इन्हें वापस लौटाते हैं अथवा नहीं।

मैं आप सब महानुभावों का निश्चित मत इस विषय में प्राप्त करना चाहता हूँ।”

श्रीकृष्ण के पश्चात् बलरामजी बोले, “श्रीकृष्ण का मन्तव्य आप पर प्रकट हुआ। देश, प्रजा और कुरु-कुल के हित में यही है कि कौरव, पांडवों का आधा राज्य इन्हें लौटा दें। इससे पारस्परिक दुर्भावना का भी अन्त होजाएगा और व्यर्थ रक्तपात भी नहीं होगा।

दूत भेजने के विचार से मैं पूर्ण सहमत हूँ। मैं चाहता हूँ कि यहाँ से जानेवाला दूत उनकी सभा में उस समय प्रस्ताव प्रस्तुत करे जब भीष्म, कृप, द्रोण, विदुर इत्यादि सब उपस्थित हों।”

सात्यकी बोला, “हमारे दूत को चाहिए कि वह उन्हें भलीप्रकार बता दें कि अब अधर्म की नौका में बैठकर दुर्योधन सैर नहीं कर सकेगा। यदि उन्होंने पांडवों का आधा राज्य वापस न किया तो हमें उनपर आक्रमण करने में विलम्ब न होगा।”

महाराज द्रुपद ने सात्यकी के कथन का सबल शब्दों में समर्थन किया। वह बोले, “अब समय नम्रता का नहीं रह गया है। हमारी नम्रता का अर्थ कौरवों के समक्ष हमारी कायरता होगा। मेरे विचार से हमें अपने मित्रों के पास युद्ध-निमन्त्रण भेजकर सेना-एकत्रित करने पर जुट जाना चाहिए। हमें इस कार्य में तनिक भी विलम्ब न करना चाहिए। युद्ध अवश्य होगा। उसे कोई टाल नहीं सकता। दुर्योधन एक से लाख तक राज्य नहीं लौटाएगा। हमें युद्ध और सन्धि दोनों की तय्यारी साथ-साथ करनी चाहिए। दूत भेजने में हमें कोई आपत्ति नहीं। हमारे पुरोहितजी हस्तिनापुर जा सकते हैं। वह नीतिज्ञ भी हैं और दूत-कार्य के सर्वथा उपयुक्त भी।”

अन्त में श्रीकृष्ण फिर बोले, “मैं महाराज द्रुपद के विचारों का हृदय से समर्थन करता हूँ। हमें सेना एकत्रित करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए। मित्रों को रण-निमन्त्रण भेजने का कार्य-भार यदि महाराज द्रुपद सँभालें तो अत्यन्त उपयुक्त होगा। हमें दूत भी तुरन्त भेज देना चाहिए। यदि महाराज घृतराष्ट्र अपने बेटे दुर्योधन को सुमार्ग पर ले आए तो ठीक है, वरना फिर युद्ध के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाता है।”

सभा में उपस्थित महानुभावों ने एक स्वर में श्रीकृष्ण के विचारों से सहमति प्रकट की और महाराज द्रुपद के पुरोहित ने हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया।

पांडवों का दूत, महाराज द्रुपद के पुरोहित, हस्तिनापुर पहुँचा तो वहाँ संधि-सभा का आयोजन हुआ। कौरवों के सभी विशिष्ठ महानुभावों ने उसमें भाग लिया। दूत ने सन्धि-पत्र उपस्थित किया तो भीष्म पिता-मह सहर्ष बोले, “पांडवों ने तेरह वर्ष वनवास के व्यतीत कर अपना आधा राज्य वापस माँगा है। पांडवों की यह माँग पूर्णरूप से उचित है। उनका आधा राज्य उन्हें लौटाकर कुरु-कुल की मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए और कुल को नष्ट होने से बचाना चाहिए। इस विग्रह के फलस्वरूप जो रक्तपात होने की सम्भावना है उसे रोकना चाहिए।”

भीष्म की गम्भीर वाणी सुनकर दूत बोला, “महामना भीष्म ने न्याय-संगत बात कही। धर्मराज युधिष्ठिर व्यर्थ युद्ध करना नहीं चाहते। उनके भाई भी उनसे पृथक् नहीं हैं।”

कर्ण यह सुनकर बोला, “दादा भीष्म अर्जुन से आतंकित होउठे हैं। वह जब देखो उसीकी वीरता का बखान करते हैं। प्रतिज्ञानुसार उन्हें बारह वर्ष के लिए फिर वनवास को जाना चाहिए क्योंकि अज्ञातवास की अवधि पूर्ण होने से पूर्व अर्जुन को पहिचान लिया गया था। युधिष्ठिर यदि वास्तव में धर्मराज हैं तो उन्हें अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी चाहिए। बारह वर्ष पश्चात् लौटने पर महाराज दुर्योधन उन्हें अवश्य अपनी शरण में स्थान देंगे। उस समय मैं भी महाराज दुर्योधन से उन्हें शरण में रखने के लिए प्रार्थना करूँगा।”

कर्ण की व्यर्थ बातें सुनकर भीष्म सरोष बोले, “कर्ण ! तुम कुरु-कुल के सर्वनाश का नाटक देखने के लिए कटिबद्ध हो। उस दिन विराट नगरी में अर्जुन के सामने दो बार पीठ दिखाकर भागते तुम्हें लज्जा नहीं आई। तुम जैसे परामर्शदाताओं ने ही दुर्योधन की मति-भ्रष्ट कर दी है।”

कृप, विदुर और द्रोण ने भी भीष्म का समर्थन किया। धृतराष्ट्र ने सभी का मत एक ओर देखकर उस समय को टालना ही उचित

समझा । वह जानते थे कि दुर्योधन पांडवों को आधा राज्य लौटाने के पक्ष में नहीं था । वह बोले, “दादा भीष्म के आदेशानुसार हमें संजय को संधि-सन्देश लेकर पांडवों के पास भेजना चाहिए ।”

इस प्रकार धृतराष्ट्र ने कुशलतापूर्वक उस समय को टाल दिया और संजय को पांडवों के पास भेजा गया ।

संजय ने धर्मराज युधिष्ठिर से भेंट की, परन्तु बातें कुछ ऐसी कीं कि जितका अर्थ कुछ भी न निकला ।

धर्मराज युधिष्ठिर यहाँ तक भुके कि उन्होंने केवल पाँच गाँवों के मिलजाने पर ही संतोष करना उचित समझा । वह संजय से बोले, “हम कुरु-कुल का विध्वंस नहीं देखना चाहते । हम राज्य-लोलुप नहीं हैं । अपने निर्वाहभर के लिए यदि केवल पाँच गाँव भी हमें मिल जाएँ तो हम सन्तोष कर लेंगे ।”

पांडवों का प्रस्ताव लेकर धनंजय महाराज युधिष्ठिर की सभा में पहुँचे तो उसे सुनकर दुर्योधन आगबगूला हो उठा । वह क्रोधपूर्ण स्वर में बोला, “पाँच गाँव क्या हम बिना युद्ध के पांडवों को सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने को उद्यत नहीं हैं ।”

धृतराष्ट्र दुर्योधन के सम्मुख एक शब्द भी न बोल सके । दादा भीष्म, वही दादा भीष्म, जिन्होंने पांचाली-स्वयंबर के पश्चात् कौरवों को पांडवों के लिए आधा राज्य छोड़ने पर विवश कर दिया था, आज अपनी आँखों के सम्मुख अन्याय होते देखकर भी मौन रह गए । पितामह अब नाममात्र के ही पितामह थे । वह द्यूत-सभा में द्रोपदी का अपमान अपनी आँखों से देखकर बड़े-बड़े आँसू गिराने के अतिरिक्त और कुछ न कर सके थे । राज-दण्ड धृतराष्ट्र के हाथों में था और वह दुर्योधन के हाथों की कठपुतली बन चुके थे । दुर्योधन के संकेत पर उन्हें नाचना पड़ता था ।

संधि-प्रस्ताव के विफल हो जाने पर दोनों पक्षों ने अपनी शक्ति का संचय करना प्रारम्भ कर दिया । पांडवों के पक्ष में सात अक्षोणी सेना

थी और कौरवों के पक्ष में ग्यारह अक्षोणी । कुल मिलाकर अठारह अक्षोणी दल एकत्रित हुआ ।

धर्मराज युधिष्ठिर ने युद्ध टालने के अन्तिम प्रयासस्वरूप श्रीकृष्ण को हस्तिनापुर भेजा ।

श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के यहाँ जाकर ठहरे । दुर्योधन ने उनके सम्मान में एक छल-भोज किया और चाहा कि उन्हें बन्दी बनालिया जाए, परन्तु श्रीकृष्ण न तो शाल्य ही थे जो कौरवों के सत्कार-चमत्कार में फँसजाते और न इतने मूर्ख ही थे कि अपने को बन्दी बनवालेते ।

वह कौरवों की भरी सभा में उत्तेजनापूर्ण स्वर में बोले, “दुष्ट, लोभी और बेईमान दुर्योधन ! मैं यहाँ कुरु-कुल को विनाश के गर्त से निकालने के लिए आया था । परन्तु तेरा इतना दुःसाहस कि मुझे बन्दी बनाने की दुष्ट भावना तेरे मन में आई ।”

पांडु-पुत्र भीम ने तेरी वह जंघा तोड़कर, जिसपर तूने आज से तेरह वर्ष पूर्व पांचाली को बिठाने के लिए कहा था, तेरा रक्तपान करने का व्रत न लिया होता तो आज तेरे विनाश का दिन आगया था । अच्छा होता यदि भीम ने वह व्रत न लिया होता और आज तेरे विनाश से कुरु-कुल नष्ट होने से बचजाता ।”

कृष्ण की गम्भीर वाणी सुनकर सभा में सन्नाटा छागया । भीष्म, कृप और द्रोण इत्यादि कृष्ण के कोप को देखकर आतंकित होउठे ।

कृष्ण खड़ेहोकर बोले, “मैं अधर्मियों की इस सभा में एक क्षण भी ठहरना अपना अपमान समझता हूँ । कौरव-कुल आज से अपने विनाश की घड़ियाँ गिननी प्रारम्भ करे । आज से सातवें दिन पांडवों की सेना कुरुक्षेत्र के मैदान में आजाएगी ।”

इतना कहकर श्रीकृष्ण सभा से चलदिए । किसी में भी श्री-कृष्ण के समक्ष एक शब्द उच्चारण करने का साहस न हुआ ।

श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के घर पहुँचे और उन्हें आज का समाचार

देकर प्रस्थान किया। चलते समय माता कुन्ती को श्री कृष्ण ने सादर प्रणाम करके कहा, “माता कुन्ती ! धर्मराज युधिष्ठिर ने युद्ध को टालने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु कौरवों के शीर्ष पर मृत्यु मँडरा रही है। काल इन्हें ग्रसने के लिए अट्टहास कर रहा है। अब इन्हें कोई नहीं बचा सकता।”

कृष्ण की गम्भीर वाणी सुनकर माता कुन्ती के नेत्रों से अश्रु-जल बरस पड़ा।

महाभारत का भीषण संग्राम टाले न टल सका। युद्ध का श्रीगणेश होगया। कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव-पांडवों की सेनाएँ आमने-सामने आकर डट गईं। विश्व के बड़े-बड़े वीरों ने इस महायुद्ध में भाग लिया। देश के वे सभी युवक जिनमें अपने जौहर दिखाने की ठनक थी, किसी-न-किसी पक्ष में आकर सम्मिलित होगए।

कौरव-सेना के सेनापति दादा भीष्म वने और पांडव-सेना के महावली भीम। दोनों सेनापतियों ने अपनी-अपनी मोर्चाबन्दी की और सेनिक व्यूह रचना की गई।

दादा भीष्म ने घोषणा की, “जब तक युद्ध मेरे सेनापतित्व में होगा, धर्म-युद्ध होगा। मेरे सेनापतित्व-काल में यदि किसीने अधर्म-युद्ध किया तो मैं युद्ध से प्रथक हो जाऊँगा।”

युद्ध की पूर्ण तय्यारी के पश्चात् वीरों ने शंखनाद किया। मारू बाजे की ध्वनि द्रुगुणित हो उठी।

अर्जुन कृष्ण से बोले, “कृष्ण ! मेरा रथ ऐसे स्थान पर लेजाकर खड़ा करो जहाँ से मैं पक्ष और विपक्ष दोनों की सेनाओं और उनके वीरों को देख सकूँ।”

श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ घुमाकर एक ऊँचे टीले पर लेजाकर खड़ा कर दिया, जहाँ से दोनों पक्ष स्पष्ट दिखाई देते थे। कृष्ण कौरवों की ओर संकेत करके बोले, “अर्जुन ! तुम्हें इन सबको यमपुरी पहुँचाना है।

इस ग्यारह अक्षोणी दल में से एक भी प्राणी बचने न पाए, यह ध्यान रखना, वरना अधर्म की कालिमा का वही धब्बा धरती माता के माथे का कलंक बनारहेगा ।”

कृष्ण की वाणी सुनकर जो उत्साह अर्जुन के हृदय में भरा था वह सामने खड़े अपने पारिवारिकजनों को देखकर ठंडा पड़गया । उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बहचली ।

यह देखकर कृष्ण बोले, “क्या अर्जुन कौरवों की इतनी महान् शक्ति को देखकर भयभीत होउठा ?”

अर्जुन बोले, “कृष्ण ! आप रथ को लौटालें । मैं युद्ध नहीं करूँगा । भय मैं काल से भी नहीं खाता, परन्तु ये लोग जो मेरे सामने खड़े हैं, इन्हें मारकर राज्यश्री का उपभोग करना व्यर्थ होगा । राज्य जैसी तुच्छ वस्तु के लिए क्या दादा भीष्म का संहार करूँ ? गुरुदेव द्रोण के प्राण लूँ ? मामा शल्य पर प्रहार करूँ ? यह मुझसे कदापि नहीं होगा । आप रथ वापस लेचलें ।”

अर्जुन के कायरतापूर्ण शब्द सुनकर कृष्ण गम्भीर होउठे । वह बोले, “अर्जुन ! आत्मा अमर है । तुम केवल निमित्त मात्र हो । कर्त्ता और है । ये जो सम्बन्ध तुम इन सबसे जोड़रहेहो, कृत्रिम हैं, असत्य हैं । केवल धर्म सत्य है । तुम यह युद्ध राज्यश्री प्राप्त करने के निमित्त नहीं कर रहे, धर्म की रक्षा के लिए कर रहेहो ।”

कृष्ण ने अर्जुन को गीता का महान् उपदेश दिया । कर्मयोग की व्याख्या की । उसे सुनकर अर्जुन ने नीचे रखा हुआ अपना गांडीव उठाया और उसकी प्रत्यंचा को पांच बार टंकारकर कहा, “कृष्ण ! आज इस अवसर पर आप न होते तो क्या आपकी सेना अर्जुन को अर्जुन बना पाती ? रथ आगे बढ़ाओ ! आपने मेरी आत्मा का अंधकार दूर कर दिया ।”

उसी समय धर्मराज युधिष्ठिर अपने रथ से उतरकर खाली हाथ

कौरव-पक्ष की ओर बढ़चले । उन्हें देख कौरव-पक्ष ने अनुमान लगाया कि युधिष्ठिर उनकी शक्ति से भयभीत होकर क्षमा-याचना के लिए आ रहे थे ।

धर्मराज युधिष्ठिर सीधे अपने गुरुजन भीष्म, कृप, द्रोण और शल्य के पास पहुँचे और उनके चरण छूकर उनका आशीर्वाद ग्रहण किया । गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त कर युधिष्ठिर फिर अपने रथ पर जाकर बैठ गए । रण-भेरी बज उठी ।

अर्जुन ने वाणों से गुरुजनों को प्रणाम किया । अपने चरणों के पास गिरे अर्जुन के वाणों को देखकर गुरुजनों की आत्मा प्रसन्न हो उठी । उनकी देह कौरवों के पक्ष में थी, परन्तु आत्मा पांडव-पक्ष में ।

धमासान युद्ध प्रारम्भ हुआ । लोहे-से-लोहा टकराने लगा । शवों पर शव पड़ने लगे । रूधिर की सरिता बह चली । महाबली भीम आज जिधर भी निकल गए मैदान साफ होता चला गया । भीष्म और अर्जुन की जमकर टक्कर हुई ।

अर्जुन युद्ध करने दूसरी दिशा को गए तो भीष्म ने पांडव-सेना का बुरी तरह संहार करना प्रारम्भ कर दिया । यह देखकर अभिमन्यु बिजली के समान दादा भीष्म पर टूट पड़ा और देखते-ही-देखते उसने एक ही समय में भीष्म के दस-दस अंग-रक्षकों का संहार कर उन्हें काल के मुख में धकेल दिया । अभिमन्यु ने एक ही वाण से दादा भीष्म के रथ की उस ध्वजा को, जिसे गिराने का साहस आज तक कोई नहीं कर सका था, काटकर भूमि पर गिरा दिया ।

अभिमन्यु के पराक्रम को देखकर महाबली भीम की छाती फूल उठी । उन्होंने “वाह वाह” की ध्वनि के साथ उत्साह से शंख-नाद किया । महात्मा भीष्म स्वयं अभिमन्यु के रण-कौशल पर मुग्ध हो उठे थे । उन्होंने मुक्त कंठ से कहा, “शाबाश ! अभिमन्यु शाबाश ! तुम सचमुच अर्जुन के साक्षात् अवतार हो ।” परन्तु साथ ही उन्होंने लज्जा का भी अनुभव

किया । उन्होंने अभिमन्यु पर तोरों की कठोर बौछार की । यह देखकर भीम, विराट, धृष्टद्युम्न और सात्यकि अभिमन्यु की रक्षाके लिए आडटे । भीष्म ने क्रोधित होकर भीम के रथ की ध्वजा को काटगिराया । यह देखकर वह क्रोध से उन्मत्त होउठा और गदा लेकर भीष्म की ओर दौड़पड़ा । भीम ने एक ही प्रहार से भीष्म के रथ को चकनाचूर कर दिया । दूसरी ओर युवराज उत्तर के हाथी ने शल्य के घोड़ों को मार गिराया । शल्य ने कृतवर्मा के रथ पर चढ़कर अपने प्राणों की रक्षा की ।

आज का दिन घमासान युद्ध में व्यतीत हुआ । सूर्य के अस्त होते ही शांति-बिगुल बजगया और दोनों ओर की सेनाएँ अपने-अपने शिविरों को चली गईं ।

७

रात्रि को दोनों शिविरों में दूसरे दिन के युद्ध का कार्य-क्रम निश्चित होने लगा । श्रीकृष्ण ने दूसरे दिन के प्रधान सेनापति पद के लिए महारथी धृष्टद्युम्न का नाम प्रस्तुत किया । धर्मराज युधिष्ठिर ने उसका अनुमोदन किया । धृष्टद्युम्न को प्रधान सेनापति घोषित किया गया । महारथी भीम ने धृष्टद्युम्न को सेना की स्थिति का ज्ञान कराया । धृष्टद्युम्न ने प्रसन्नतापूर्वक प्रधान सेनापति का भार अपने कंधों पर सँभाला । इसके पश्चात् सभा विसर्जित हुई और सब सोने के लिए चले गए ।

अर्धरात्री के पश्चात् व्यूह-रचना का कार्य प्रारम्भ हुआ । धृष्टद्युम्न ने दुर्भेद्य व्यूह की रचना कराई । व्यूह-रचना कर धृष्टद्युम्न ने सेना का निरीक्षण किया ।

कोरव रात्रि को खूब ठंकारकर सोए । दुर्योधन की प्रातःकाल आँखें खुलीं तो उसने पांडव-सेना को अभेद्य व्यूह के रूप में समक्ष मैदान

में डटेपाया । उसे देखकर उसके होश उड़गए और वह सीधा दादा भीष्म के पास पहुँचा ।

भीष्म ने भी एक व्यूह की रचना कर अपनी सेना को युद्ध के लिए तय्यार किया । निश्चित समय पर रण-भेरी का नाद सुनाई दिया । आज भीष्म की अंग रक्षा के लिए स्वयँ दुर्योधन, द्रोण, शल्य और जयद्रथ युद्ध-क्षेत्र में गए थे ।

भीष्म ने आज अद्भुत रण-कौशल दिखाया । जब अर्जुन ने देखा कि उनकी सेना वस्तु हो उठी है तो वह सब ओर से दृष्टि हटाकर भीष्म के समक्ष आडटे । अर्जुन के समक्ष आते ही भीष्म का रण-कौशल लुप्त होगया । भीष्म ने क्रोधित होकर कृष्ण पर तीर छोड़ा । कृष्ण की देह पर उस तीर ने घाव करदिया । यह देखकर अर्जुन के क्रोध का पारा-वार न रहा । उन्होंने ऐसे तीक्ष्ण वाणों की वर्षा की कि कौरव-सेना गाजर-मूली के समान कट-कटकर भूमि पर गिरनेलगी । अर्जुन ने भीष्म के सारथी और घोड़ों को मार गिराया ।

दूसरी ओर धृष्टद्युम्न और द्रोण का युद्ध होरहा था । भीम कलिंग-राज तथा उनके दोनों पुत्रों से भिड़ रहे थे । भीम ने कलिंगराज के दोनों पुत्रों को धराशायी कर उसकी सेना को ध्वस्त करदिया । यह देखकर भीष्म उनकी सहायता के लिए दौड़पड़ें । धृष्टद्युम्न और सात्यिकी भीम की सहायता को जापहुँचे । उनके पहुँचते-पहुँचते भीम ने कलिंग-राज को समाप्त करदिया । उसने फिर दादा भीष्म की ओर देखा ।

भीष्म ने भीम पर तीर छोड़ा । भीम का क्रोध अभी शांत नहीं हुआ था । उसने लपककर भीष्म के सारथी का काम तमाम करदिया । भीष्म के रथ के घोड़े भयभीत होकर भागखड़ेहुए । पांडवों की विजय-पताका फहराउठी । महावली भीम की गदा ने आज युद्ध-भूमि में कुहराम मचादिया ।

मध्यान्ह के पश्चात अभिमन्यु और भीष्म का भीषण युद्ध हुआ ।

तभी दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण भी अभिमन्यु से जाभिड़ा। अभिमन्यु के तीरों से लक्ष्मण का बदन छलनी होगया। यह देखकर दुर्योधन अपने साथियों के साथ वहाँ जा पहुँचा। कृष्ण की दृष्टि उधर गई तो उन्होंने भी अपना रथ उसी दिशा में घुमा दिया। अर्जुन के तीरों की बौझार ने मैदान रिक्त कर दिया। कौरव-सेना भागखड़ी हुई। भीष्म ने सेना को रोकने का लाख प्रयास किया परन्तु वह नहीं रुक सकी। केवल भीष्म और द्रोण ही मैदान में खड़े रह गए।

भीष्म ने आज मुक्त-कंठ से अर्जुन के रण-कौशल की प्रशंसा की। सूर्यास्त होने पर शांति-विंगुल बजा दिया गया। पांडव सेना भी अपने शिविर को लौट गई।

आज का मैदान पांडव-पक्ष के हाथों में रहा। कौरव-पक्ष पर आतंक और उदासी छा गई।

रात्रि को श्रीकृष्ण ने फिर एक सभा बुलाई और दूसरे दिन का कार्य-क्रम निश्चित किया।

अर्ध-रात्रि में उठकर पांडवों ने अपनी सेना के व्यूह की रचना की और तीसरे दिन के युद्ध के लिए तय्यार होगए। कौरवों ने भी अपनी सेना की व्यूह-रचना की। निश्चित समय पर युद्ध प्रारम्भ हो गया।

आज भीष्म ने प्रारम्भ से ही युद्ध इतनी कुशलतापूर्वक किया कि पांडवों के पैर उखड़ गए। भीम यह देखकर सिंह के समान गरज उठा। भीम का नाद सुनकर पांडवों के उखड़ते हुए पैर जम गए। भीम क्रोध में भरकर कौरव-दल पर दूट पड़े। उनका आगे बढ़ना था कि सेना उनके पीछे-पीछे अपना जौहर दिखाने लगी और कौरव-दल के होश उड़ा दिए। कौरव-दल में हाहाकार मच गया। उनकी सेना पीठ दिखाकर भागखड़ी हुई। द्रोण ने अपनी सेना को रोकने का निष्फल प्रयास किया। पांडव-दल के हर्ष-नाद से वायु-मंडल आच्छादित हो उठा।

पांडव-दल के हर्ष-नाद को सुनकर दुर्योधन का दिल दहल गया।

वह क्रोध में भरकर भीष्म की सहायता के लिए जा पहुँचा और भर्त्सना-पूर्ण वाणी में बोला, “पितामह ! यदि आपको इसी प्रकार पक्षपातपूर्ण युद्ध करना था तो मुझे पहिले ही बता देना था । मुझे पता होता कि आप युद्ध में मुझे धोखा देंगे तो मैं कुछ और प्रबन्ध करता । कर्ण आपके ही कारण युद्ध में भाग नहीं ले रहा है ।”

दुर्योधन की भर्त्सना सुनकर भीष्म क्रोधित होकर बोले, “दुर्योधन ! मैं प्राण-पण से युद्ध कर रहा हूँ । तुम्हारी विजय नहीं हो रही, इसमें मेरा दोष नहीं है । धर्म के समक्ष अधर्म की कभी विजय नहीं हो सकती । मैं विधाता का सिद्धान्त नहीं बदल सकता । ‘मुझमें जितनी शक्ति और रण-कौशल है मैं उस सबका प्रयोग कर रहा हूँ और करूँगा ।’

भीष्म के अंतिम वाक्य से दुर्योधन के हृदय में तनिक साहस का संचार हुआ । उसे फिर कुछ आशा बँधी । युद्ध फिर जोरों से प्रारम्भ होगया । भीष्म के तीरों से पांडव-दल काई की तरह फट गया । मैदान खाली होगया ।

भीष्म का विनाशकारी युद्ध देखकर श्रीकृष्ण चिंतित हो उठे । वह अर्जुन से बोले, “यह समय यहाँ नष्ट करने का नहीं है । भीष्म के भीषण प्रहारों से पांडव-सेना भाग रही है ।” इतना कहकर कृष्ण ने अर्जुन का रथ भीष्म की ओर मोड़ दिया ।

अर्जुन ने दूर से ही पितामह को ललकारा, परन्तु आज भीष्म की प्रखर वाण-वर्षा ने अर्जुन के भी छक्के छुड़ा दिए । यह देखकर कृष्ण की क्रोधाग्नि भड़क उठी । उन्होंने सोचा कि भीष्म आज पांडव-सेना का समूल विध्वंस कर डालेंगे । वह अपने अस्त्र धारण न करने की प्रतिज्ञा को भूल गए और उन्होंने अपना सुदर्शन-चक्र उठा लिया ।

कृष्ण के चक्र उठाते ही कौरव-सेना में कुहराम मच गया । कृष्ण को सुदर्शन सँभाले देखकर भीष्म ने धनुष-बाण नीचे रख दिए । वह सहर्ष बोले, “कृष्ण ! आओ, मेरा संहार करो । आपके हाथ से मरकर मुझे

शांति प्राप्त होगी । आज मेरी यही प्रतिज्ञा थी कि आपसे अस्त्र उठवा दूँगा ।”

कृष्ण सक्रोध बोले, “प्रतिज्ञा को देखते हो दादा भीष्म ! अपने अधर्म-युद्ध को नहीं देखते । कौरवों के जिस अन्न को खाने की दुहाई देकर आप अधर्म की रक्षा में युद्ध कर रहे हैं, क्या वह अन्न पांडवों का नहीं है ? क्या ये पांडव आपके नहीं हैं । अधर्म की बढ़ती हुई शक्ति को कृष्ण सहन नहीं कर सकता । कौरव-राज्य में रहकर अधर्म आपके हृदय में बस गया है । जब पांचाली का भरी सभा में अपमान हुआ तो आपकी यह वीरता कहाँ गई थी ? जब दुर्योधन ने पांडवों को सूई की नोंक के बराबर भी भूमि देने से इन्कार कर दिया था, तो आपकी इस प्रखर युद्ध-विद्या को क्या होगया था ? आज आप अपना रण-कौशल दिखाने आए हैं और वह भी अपने बच्चों पर । धिक्कार है आपके इस रण-कौशल और पराक्रम को । अधर्म पर चलते हो और मेरे वचन की दुहाई देते हो ।”

कृष्ण की गम्भीर वाणी सुनकर दादा भीष्म की गर्दन झुक गई । उन्हें अपनी वीरता पर ग्लानि हो उठी । उन्होंने मन में सोचा कि वास्तव में वह जो कुछ कर रहे थे वह अन्यायपूर्ण है । उन्होंने हस्तिनापुर राज्य का जो अन्न खाया वह केवल कौरवों का ही नहीं था । जिस राज्य के लिए उन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया क्या उसमें उनके लिए अन्न का प्रश्न खड़ा होता था ?

भीष्म को आज हार्दिक पश्चाताप हुआ । उनकी जिन आंखों ने पांचाली का अपमान देखा था, उन्हें उसी समय फूट जाना चाहिए था । उनके जिन कानों ने दुर्योधन के वे अन्यायपूर्ण शब्द सुने, उनकी श्रवण-शक्ति उसी समय नष्ट हो जानी चाहिए थी । उन्हें पांडवों के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण नहीं करने चाहिए थे ।

कृष्ण घन-गर्जन के समान गम्भीर वाणी में बोले, “बोलो पितामह ! मौन क्यों हो ? आप किसका नमक खा रहे हैं ? क्या वह

आपका अपना नमक नहीं है ? क्या आप महाराज शांतनु के पुत्र नहीं हैं ? क्या आपने चित्रांगद और विचित्रवीर्य को नहीं पाला ? क्या आपने पांडव और धृतराष्ट्र का पालन-पोषण और संरक्षण नहीं किया ? यह सब कुछ करने वाला आज कौरवों का नमक खाने की दुहाई देता है और उनकी ओर से रथ पर बैठा पांडवों पर शस्त्र-वर्षा कर रहा है ।” यह कहकर श्रीकृष्ण अट्टहास कर उठे । उनके हास्य से सम्पूर्ण वायु-मंडल दहल उठा । कृष्ण गम्भीर वाणी में बोले, “धर्म का ध्वंस करने वाले अन्यायी और विधर्मी को बढ़ते देखकर कृष्ण का सुदर्शन-चक्र आप-से-आप ऊपर उठजाता है । आपके वाणों को तरकश में रखाकर सुदर्शन-चक्र वापस लौट आएगा । आप चिन्ता न करें इसकी ।”

कृष्ण फिर जाकर अर्जुन के रथ पर बैठ गए । अर्जुन ने गांडीव उठाकर बाण-वर्षा करनी प्रारम्भ कर दी । भीष्म अब युद्ध में उत्साह न दिखा सके । उनका समस्त साहस कृष्ण ने भंग कर दिया था । उनका हृदय आत्मग्लानि से पूर्ण था ।

अर्जुन के प्रखर वाणों की मार से शत्रु-सेना में भगदड़ मच गई । असंख्यों कौरव-वीर इस भगदड़ में कुचलकर मारे गए । कौरव-पक्ष में हाहाकार मच गया । अर्जुन के तीरों ने शत्रुओं का चुन-चुन कर संहार किया ।

सूर्यास्त का समय हो गया था । कृष्ण मुस्कराकर बोले, “पितामह ! शांति का बिगुल बजवाइए और मेरी प्रतिज्ञा भंग होने की दुहाई देते हुए अपने अन्नदाताओं के शिविर को लौटिए ।”

भीष्म लज्जित होकर बोले, “कृष्ण ! अब और लज्जित न करो । कुरु-कुल की मर्यादा को भंग करनेवाला अन्य कोई नहीं, मैं ही हूँ । मैंने अधर्म को सहन किया । मुझसे बड़ा पातकी अन्य कोई नहीं है । मेरे इस अधर्म कार्य का प्रायश्चित्त मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता ।”

कृष्ण को आज पितामह के मुख से अपनी भूल अनुभवकरते सुनकर आत्मसंतोष हुआ ।

दोनों पक्षों की सेनाएँ अपने-अपने शिविरों को लौट गई ।

चौथे दिन का युद्ध और भी भयंकर था । भीष्म और अर्जुन का युद्ध देखने के लिए दोनों सेनिक-दल मौन होकर खड़े हो गए । दूसरी ओर अभिमन्यु अश्वस्थामा, शल्य इत्यादि के दाँत खट्टे कर रहा था । अभिमन्यु के हाथों अश्वस्थामा और शल्य को घायल होते देख दुर्योधन भी उधर जा पहुँचा । यह देखकर कृष्ण ने भी अपना रथ उधर ही मोड़ दिया । दोनों ओर से प्रलय के बादल मँडरा उठे ।

भीम का पुत्र घटोत्कच भगदत्त और मगधराज से भिड़ रहा था । भीम घटोत्कच को अकेला देखकर उधर ही चले गए । दुर्योधन ने भगदत्त को भीम की गदा के प्रहार से भूमि पर गिरते देखा तो वह उसकी सहायता के लिए लपका । अभिमन्यु, सात्यकि और धृष्टद्युम्न भीम को अकेले देखकर वहाँ जा पहुँचे ।

मगधराज ने अभिमन्यु की ओर अपने हाथी को बढ़ाया तो अभिमन्यु ने उसे एक ही तीर से मारकर भूमि पर गिरा दिया । तभी भीम की गदा ने भगदत्त का काम तमाम कर दिया । यह देखकर दुर्योधन क्रोधावेश में भीम की सेना पर दूट पड़ा । दुर्योधन ने भीम पर तीर छोड़ा और वह घायल हो गए । घायल होकर भीम की क्रोधाग्नि धधक उठी । वह आँधी के समान शत्रु पर दूट पड़े । उन्होंने दुर्योधन तथा शल्य को घायल कर दुर्योधन के सात भाइयों को यमपुरी पहुँचा दिया ।

भीष्म को आज दिनभर अर्जुन ने हिलने नहीं दिया । उनके हर वारण को अर्जुन ने विफल किया । आज भीष्म के वारणों से पांडव-सेना के एक भी वीर की क्षति नहीं हुई और संध्या समय शांति-बिगुल बज गया ।

पाँचवें दिन भीष्म से लड़ने के लिए शिखंडी मैदान में आया ।

द्रोण जानते थे कि भीष्म शिखंडी से नहीं लड़ेंगे, इसलिए वह स्वयं शिखंडी से लड़ने लगे और लड़ते-लड़ते उसे दूसरी दिशा में ले गए। शिखंडी के चलेजाने पर भीष्म अर्जुन से लड़ने लगे। अभिमन्यु लक्ष्मण से भिड़ रहे थे और भीम दुर्योधन से।

लड़ते-लड़ते संध्या होगई और युद्ध का कोई निर्णय न हो सका।

छठे दिन युद्ध में भीम ने दुर्योधन को घायल कर दिया। सातवें दिन का युद्ध भी निर्णयात्मक न हुआ। आठवें दिन भीम ने दुर्योधन के दस भाइयों को यमपुरी पहुँचाया।

अभी तक के युद्ध में विशेष क्षति कौरवों को ही हुई थी। रात्रि को दुर्योधन ने अपने मित्रों की एक सभा की, जिसमें भीष्म, द्रोण, कृप इत्यादि को निमंत्रित नहीं किया गया था। उनके स्थान पर आज कर्ण को बुलाया गया।

दुर्योधन ने स्पष्ट शब्दों में पितामह की निंदा की और उन्हीं को अपनी पराजय का कारण बताया। दुर्योधन ने यहाँ तक कहा कि भीष्म पांडवों से मिलकर उनके साथ विश्वासघात कर रहे हैं।

कर्ण ने दुर्योधन की बात का समर्थन करते हुए कहा, “महाराज दुर्योधन ! आप दादा से कहिए कि वह अस्त्र त्याग दें तो मैं समर में उतर सकता हूँ। तब देखना पांडवों की क्या दशा होती है।”

कर्ण की बातें दुर्योधन के हृदय में घर कर गईं। वह अपनी नित्य प्रति की हार से व्याकुल हो उठा था। उसके बीस भाई रण में खेत रहे थे। उसका भगदत्त जैसा साथी युद्ध में काम आ चुका था। वह स्वयं भी घायल हो गया था। उसका छः अक्षोणी दल समाप्त हो चुका था। अब पांडवों और कौरवों की सैन्य-शक्ति लगभग बराबर होगई थी। दुर्योधन का मन बहुत क्षुब्ध था।

दुर्योधन वहाँ से उठकर सीधा भीष्म के शिविर में पहुँचा। वह बोला, “पितामह ! आपकी पांडवों के प्रति ममता के कारण हमारी युद्ध-भूमि

में नित्य पराजय होरही है। आपने पांचालों को मारने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु आप उसे पूर्ण न करसके। मेरी इच्छा है कि आप अब युद्ध से अवकाश गृहणकर कर्ण को युद्ध-भूमि में उतरने दें।”

भीष्म ने दुर्योधन की बात का कोई उत्तर न दिया। उनकी आत्मा को महान् कष्ट हुआ। यह सत्य था कि उनका प्रेम पांडवों पर था, परन्तु उन्होंने युद्ध में विश्वासघात नहीं किया था। अर्जुन के समक्ष वह आगे न बढ़सके और उनकी हारहुई, इसके लिए वह दोषी नहीं थे।

भीष्म गम्भीर वाणी में बोले, “दुर्योधन दोष तुम्हारा नहीं है, समय का है। कल मेरे युद्ध का नवाँ दिन होगा। कल या तो मैं पांचालों को समाप्त करदूँगा, या स्वयँ समाप्त होजाऊँगा, परन्तु मरूँगा नहीं। सम्पूर्ण महाभारत को अपनी आँखों से देखकर प्राण-त्याग करूँगा और देखूँगा कि पांडवों के समक्ष तुम्हारा अन्य कौन सेनापति होगा जो नौ दिन तक डटसकेगा ? तुम इस समय यहाँ से चलेजाओ।”

दुर्योधन अपने हृदय में भीष्म की प्रतिज्ञा को सुनकर आशा लिए अपने शिविर को लौटगया।

कृष्ण गत तीन चार दिन से देखरहे थे कि जब शिखंडी भीष्म के सम्मुख जाता था तो भीष्म उसपर वार नहीं करते थे। उन्होंने आज रात्रि में फिर अपने चुनेहुए वीरों की एक सभा की और धृष्टद्युम्न से कहा, “धृष्टद्युम्न ! आज रात्रि को तुम अपने अभेद्य-व्यूह की रचना करो और उसके सिंहाद्वार पर शिखंडी को रखो। उसके दोनों ओर अभिमन्यु, भीम, नकुल, सहदेव, विराट, घटोत्कच, सात्यकी और तुम सब रहना। द्रोण, कृप, दुर्योधन इत्यादि जो कोई कौरव-योद्धा शिखंडी के समक्ष आए उसे तुम लोग सँभालना। किसी को शिखंडी पर आक्रमण करने का अवसर न मिले। अर्जुन का रथ शिखंडी के पीछे रहेगा। पितामह भीष्म ने आज दुर्योधन से कल के युद्ध में पांचालों को समाप्त करने या स्वयँ मरने का प्रण किया है।”

धृष्टद्युम्न आज रात्रि भर नहीं सोए और सम्पूर्ण रात्रि उन्होंने चन्द्रमा की चांदनी में अभेद्य-व्यूह की रचना में व्यतीत की। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर, विराट, सात्यकी, अभिमन्यु और घटोत्कच भी वहीं डटे रहे। आज के व्यूह की रचना श्रीकृष्ण ने अपनी देख-रेख में कराई थी। वह स्वयं रात्रि भर उसका निरीक्षण करते रहे थे।

प्रातःकाल भीष्म का रथ युद्ध-भूमि में आया तो उन्हें अपने समक्ष पांडव-व्यूह के सिंहद्वार पर शिखंडी खड़ा दिखाई दिया। उसे देखकर भीष्म समझ गए कि आज उनका अन्तिम दिन था। मृत्यु उनके शीर्ष पर मँडरा उठी।

युद्ध-प्रारम्भ होने का शंखनाद हुआ। रणभेरी बज उठी। दुर्योधन ने व्यूह के सिंह-द्वार पर शिखंडी को खड़े देखा तो छूटते ही उसपर आक्रमण किया। भीम दुर्योधन को उस ओर बढ़ते देखकर उसकी ओर लपका और इतने जोर का प्रहार किया कि वह शिखंडी की ओर बढ़ना भूलकर भीम से भिड़ गया। भीम दुर्योधन को धकेलता हुआ वहाँ से बहुत दूर ले गया।

शिखंडी ने भीष्म पर आक्रमण किया तो द्रोण भपटकर भीष्म के सम्मुख आ गए और उन्होंने शिखंडी के तीर को बीच में ही काटकर शिखंडी पर तीर छोड़ा। अर्जुन ने द्रोण के तीर को बीच में ही काट दिया। धृष्टद्युम्न ने उसी समय द्रोण पर भीषण आक्रमण किया। धृष्टद्युम्न के आक्रमण ने द्रोण को इतनी बुरी तरह से त्रस्त किया कि उन्हें भीष्म का ध्यान ही न रहा। धृष्टद्युम्न द्रोण से लड़ते हुए वहाँ से पर्याप्त दूर निकल गए।

शल्य शिखंडी की ओर बढ़े तो सात्यकी ने उन्हें आगे नहीं बढ़ने दिया। तब कृप ने देखा कि भीष्म अकेले रह गए। वह भाटकर उधर आए तो नकुल ने उनसे युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। जब जयद्रथ ने देखा कि भीष्म का कोई अंग-रक्षक नहीं रहा तो उसने अपना रथ भीष्म की

रक्षा के लिए उधर दौड़ाया । अभिमन्यु ने जयद्रथ को उधर आते देखा तो उसने उसके दोनों घोड़ों और सारथी को मारगिराया ।

दादा भीष्म की सहायता के लिए एक भी अंग-रक्षक शेष न रहा । अवसर देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, “अर्जुन ! भीषण आक्रमण करो । इससे अच्छा अवसर फिर नहीं मिलेगा ।”

उसी समय युधिष्ठिर भी वहाँ आगए । युधिष्ठिर गम्भीरतापूर्वक बोले, “अर्जुन ! आज दादा को समाप्त करना होगा । दादा ने हमारे विपक्ष में अस्त्र गहण करके अधर्म-कार्य किया है । हमने दादा का क्या अहित किया जो इन्होंने हमारे विरुद्ध कौरवों का पक्ष लिया ।”

कृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिर का आदेश प्राप्त कर अर्जुन ने दादा भीष्म पर भीषण प्रहार किया । संध्या होते-होते भीष्म का बदन छलनी होगया । उनका सारा बदन अर्जुन के वाणों से विधगया । सूर्यास्त तक दादा भीष्म पृथ्वी पर गिरपड़े । उनके बदन पर इतने वाण गुभे थे कि वाणों की शय्या सी बन गई थी ।

भीष्म के गिरते ही कौरव-दल में हा-हाकार मँचगया । युद्ध बन्द होगया । कौरव पांडव दोनों ने आगे बढ़कर भीष्मपितामह के चरण छुए और उनकी चरण-रज अपने-अपने मस्तक पर लगाई ।

भीष्म ने नेत्र खोलकर कहा, “बच्चो ! मैं चाहता हूँ कि मेरे साथ तुम दोनों का पारस्परिक मतभेद समाप्त होजाए । मैं सूर्य उत्तरायण होने पर प्राण त्याग करूँगा !” फिर कुछ ठहरकर बोले, “बच्चो ! मेरा सिर नीचे लटकरहा है । मुझे इससे कष्ट होरहा है । इसे ऊपर उठादो ।”

यह सुनकर कौरव तुरन्त मखमली तकिए लेआए । भीष्म बोले, “मुझे ये तकिए नहीं चाहिएँ दुर्योधन ! तीरों की शय्या पर सोनेवाला भीष्म मखमल के तकिए नहीं लगाएगा ।” वह फिर अर्जुन की ओर देखकर बोले, “अर्जुन ! मेरा सिर नीचे लटकरहा है बेटा ! इसे ऊपर उठादो ।”

अर्जुन ने तुरन्त तरकश से दो तीर निकालकर मारे और दादा भीष्म का सिर ऊपर उठा दिया ।

भीष्म बोले, “बेटा मुझे प्यास लगी है ।”

अर्जुन ने तभी एक तीर भूमि में ऐसा मारा कि भूमि से जल का फव्वारा निकलकर भीष्म के मुखपर गिरने लगा ।”

भीष्म गद्गद होकर बोले, “बेटा अर्जुन ! तेरे सरीखा धनुर्धर पृथ्वी तल पर दूसरा नहीं है । तुम्हें युद्ध-भूमि में कोई परास्त नहीं कर सकता ।”

भीष्म फिर दुर्योधन से बोले, “बेटा ! दुर्योधन ! मेरी मृत्यु से ही यदि तुम्हारी बुद्धि सुमार्ग पर आजाए तो मैं अपनी मृत्यु को सार्थक मानूँगा । मेरा कहा मानो तो अब भी पांडवों को इनका आधा राज्य देकर परस्पर प्रेम-भाव से रहो । अभी कुछ नहीं विगड़ा है । तुम चाहो तो अब भी कुरुकुल को नष्ट होने से बचा सकते हो ।”

इसके पश्चात कुछ रक्षकों को छोड़कर शेष सब अपने-अपने शिविरों को चले गए ।

कर्ण को यह समाचार मिला तो वह भी उनके पास आया और नेत्रों में आँसू भरकर बोला, “दादा ! मेरा अपराध क्षमा करदो । मैंने आपके प्रति जिन कटु-वचनों का प्रयोग किया, वह सर्वथा निंदनीय था ।”

कर्ण की बात सुनकर भीष्म मुस्कराकर बोले, “कर्ण ! मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया । परन्तु क्या तुम भी मेरी एक बात मान सकते हो ? यह युद्ध तुम्हारे ही कारण हो रहा है । तुम चाहो तो इसे रोक सकते हो । तुम कुन्ती के पुत्र और युधिष्ठिर के भाई हो । मेरा कहा मानकर तुम इस युद्ध को रोकदो ।”

कर्ण कुछ सोचकर बोला, “पितामह ! मुझे कुन्ती माता ने त्याग-दिया और मेरा पालन-पोषण महाराज दुर्योधन की कृपा से हुआ । मैं इस

समय उनका साथ नहीं छोड़सकता । महाराज दुर्योधन कभी युद्ध बन्द नहीं करेंगे । मैं आपकी आज्ञा का पालन करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ ।”

भीष्म ने नेत्र बन्दकरके कहा, “तुम्हारी इच्छा कर्ण !”

भीष्म फिर एक शब्द भी न बोले । वह नेत्र बन्दकिए लेटेरहे । कर्ण अपने शिविर को लौटगया ।

८

दादा भीष्म के शर-शय्या पर गिरजाने का शोक कौरव-दल में छा-गया था । दुर्योधन यो भर्त्सना के रूप में पितामह से चाहे जो कुछ भी कहदेता था, परन्तु वह हृदय से जानता था कि भीष्म जैसा वीर अन्य कोई उनके पक्ष में नहीं था, उनके रण-भूमि में गिरने से दुर्योधन के हाथ-पैर द्रुटगए ।

दुर्योधन इसी शोक में बैठा था कि उसे सामने से कर्ण आता दिखाई दिया । दुर्योधन को अधीर देखकर वह उत्साहपूर्ण स्वर में बोला, “दुर्योधन ! अधीर क्यों हो ? दादा भीष्म के रहते मैं अस्त्र नहीं उठा सकता था । अब कल से तुम युद्ध में मेरा जौहर देखना ।”

कर्ण की उत्साहवर्धक बातें सुनकर दुर्योधन के बैठतेहुए दिल ने तनिक उभारालिया । डूबते को तिनके का सहारा मिलगया । वह गद्गद् होकर बोला, “भय्या कर्ण ! सच बात तो यह है कि मैंने पांडवों से युद्ध करने की बात एक मात्र तुम्हारे ही बलपर ठानी थी । हमारे वयोवृद्ध लोगों का हृदय पांडवों के साथ है, हमारे साथ नहीं है । इनका हमारे पक्ष में युद्ध करना भी केवल दिखावा मात्र है । यह सब-कुछ तुम भलीप्रकार जानतेहो । हमें अब कल के सेनापति का निश्चय करलेना चाहिए ।”

कर्ण बोला, “भीष्म के पश्चात् सेनापति-पद के लिए आचार्य द्रोण से योग्य और कौन होसकता है ?”

कर्ण की इस बात का सबने समर्थन किया ।

द्रोण के सम्मुख यह प्रस्ताव पहुँचा तो उन्होंने भी सहर्ष उसे स्वीकार करलिया । वह बोले, “वत्स दुर्योधन ! मैं तुम लोगों का शिक्षण-कार्य करतारहा हूँ, परन्तु युद्ध का अभ्यास मुझे नहीं है । भी जब यह भार तुमने मेरे सिर पर रखा है तो मैं इसे उठाने को उद्यत हूँ । एक मात्र धृष्टद्युम्न को छोड़कर मैं समस्त पांडव-सेना के साथ लड़ सकता हूँ ।”

दुर्योधन बोला, “आचार्य ! आप किसी प्रकार युधिष्ठिर को जीवित पकड़लाएँ । मैं उन्हें जुए में हराकर फिर उनके वनवास की व्यवस्था करना चाहता हूँ । मैं उनको मारना नहीं चाहता, क्योंकि उनके मरने पर अर्जुन प्रलयकारी रूप धारण करलेगा ।”

द्रोण बोले, “धर्मराज को जीवित पकड़लाना सरल कार्य नहीं है । जब तक अर्जुन धर्मराज के पास छाया के समान लगा है तब तक धर्मराज को कोई छूभी नहीं सकता । हाँ यदि तुम अर्जुन को किसी प्रकार युधिष्ठिर के पास से हटालो तो सम्भव है कि मैं इस कार्य में सफल हो-सकूँ ।”

सुशर्मा बोला, “आचार्य ! यदि धर्मराज युधिष्ठिर को पकड़ने की चेष्टाकरें तो हम लोग आज अर्जुन को ललकारकर युद्ध के लिए दूर लेजासकते हैं ।”

सुशर्मा की सलाह आचार्य को पसन्द आई । वह बोले, “यदि अर्जुन युधिष्ठिर से प्रथक होजाए तो मैं युधिष्ठिर को बन्दी बनालूँगा । मैं इसका पूर्ण प्रयास करूँगा ।”

आचार्य द्रोण के अन्तिम शब्द सुनकर दुर्योधन की आत्मा प्रसन्न हो-उठी । उसका हृदय उत्साह से भरगया और वह उन्मत्त होकर बोला, “आचार्य ! कल युद्ध में अपनी विजय होगी । कल महाबली कर्ण भी युद्ध-क्षेत्र में अवतीर्ण होंगे ।”

कौरवों की इस मंत्रणा को पांडव-दूतों ने तुरन्त जाकर कृष्ण को सुनाया । पांडवों की ओर से युद्ध-नीति का संचालन श्रीकृष्ण कर रहे थे ।

कृष्ण ने निश्चय किया कि अर्जुन छाया के समान युधिष्ठिर के साथ रहेंगे । युधिष्ठिर को एक क्षण के लिए भी अकेला न छोड़ा जाएगा ।

दूसरे दिन युद्ध प्रारम्भ हुआ । द्रोण ने व्यूह-रचनाकर युद्ध प्रारम्भ किया । रण-भेरी बज उठी और योद्धा-गण अपने-अपने विपक्षियों पर दूट पड़े ।

आज कर्ण की पताका भी युद्ध-भूमि में फहरा रही थी । कर्ण के उत्साह को देखकर दुर्योधन भीष्म के अभाव को भूल गया था । कर्ण को देखकर सेना में भी नवीन उत्साह जाग्रत हो उठा था । कर्ण और आचार्य द्रोण के जय-घोष से आकाश गूँज उठा था ।

पांडव आज बहुत सतर्कता से युद्ध कर रहे थे । उनके व्यूह के सिंह-द्वार पर अर्जुन का रथ था । कर्ण ने अर्जुन को देखकर दूर से ही ललकारा तो अर्जुन से उसके शब्द सहन न हो सके । अर्जुन ने क्रोध में भरकर एक तीर ऐसा छोड़ा कि कर्ण के रथ की ध्वजा कटकर आकाश में उड़ गई ।

द्रोण ने प्रलयकारी युद्ध किया । उनके प्रखर वाणों की वर्षा से पांडव-सेना त्रस्त हो उठी । चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई । यह देख धर्मराज युधिष्ठिर कुछ प्रमुख वीरों के साथ द्रोण के सम्मुख आडटे । भीम शल्य से युद्ध में जुटे थे और सात्यकि कृतवर्मा से । भीम ने शल्य पर प्रहार किया तो वह मूर्छित होकर धराशायी हो गए । कौरव-सेनिक उन्हें उठाकर ले गए ।

द्रोण के वाणों से आज शूरसेन ने वीरगति पाई तो पांडव-दल में उदासी छा गई । युधिष्ठिर अकेले ही द्रोण से जूझ पड़े । द्रोण ने धर्मराज को वाणों की वर्षा कर घायल कर दिया ।

उधर अर्जुन को सुशर्मा ने बुरी तरह घेर लिया था । आचार्य द्रोण

अब अवसर देखकर युधिष्ठिर को बाँधलेना चाहते थे । यह देखकर कृष्ण अर्जुन से बोले, “अर्जुन ! मेरा हृदय व्याकुल होउठा है । हमें तुरन्त धर्मराज की सुधि लेनी चाहिए । कहीं ऐसा न हो कि कोई अनर्थ होजाए ।”

कृष्ण ने अपना रथ तीव्र गति से युधिष्ठिर की ओर बढ़ा दिया । वह पलक मारते शत्रु-सेना को काटते-छाँटते धर्मराज के पास जा पहुँचे । उन्होंने देखा कि द्रोण ने धर्मराज को बन्दी बनाने के लिए अपना पाष फँला दिया था और धर्मराज घायल होकर गिरनेवाले थे ।

अर्जुन ने दूर से ही एक तीर ऐसा चलाया कि द्रोण का पाष टुकड़े-टुकड़े होगया । द्रोण खड़े-के-खड़े रह गए । तभी अर्जुन के वाण उनके चारों ओर मँडराउठे ।

दिवसावसान समीप था । युद्ध बन्द होगया । योद्धा-गण अपने-अपने शिविरों को चले गए ।

द्रोण की आज की असफलता ने दुर्योधन को उदास कर दिया । द्रोण साहसपूर्ण वाणी में बोले, “दुर्योधन ! हतोत्साहित होने का कोई कारण नहीं है । मैंने कल ही तुमसे कहा था कि अर्जुन के रहते युधिष्ठिर को बन्दी बनाना कठिन है । इसी से मेरा आज का प्रयास विफल होगया । यदि अर्जुन कुछ देर और न आता तो मैंने युधिष्ठिर को पाष में बाँध लिया होता । युद्ध के समय यदि अर्जुन को किसी प्रकार मेरे सामने से दूर लेजाया जा सके तो हमें सफलता मिल सकती है ।”

यह सुनकर त्रिगर्तराज बोले, “मैं आज आपके सम्मुख शपथ लेता हूँ कि मैं कल अर्जुन से घोर युद्ध करके उसे आपसे दूर लेआऊँगा । कल या तो मैं ही नहीं रहूँगा या अर्जुन ही नहीं होगा ।”

पांडव-पक्ष में भी रात्रि को मंत्रणा-सभा का आयोजन हुआ । दूसरे दिन की युद्ध-नीति पर विचार किया गया ।

उषा ने रात्रि के अंधकार को भेदकर दर्शन दिए । पांडव-सेना मैदान में उतर आई । कौरव-सेना भी उसके समक्ष आडटी ।

रण-भेरी बजउठी और त्रिगर्तराज ने अर्जुन को ललकारा । अर्जुन युधिष्ठिर से बोले, “धर्मराज ! सत्यजित आपकी रक्षा में रहेगा । यदि सत्यजित वीरगति को प्राप्त होजाए तो आप तुरन्त युद्ध-स्थल से हट जाँ । द्रोण से अकेले लड़ने का प्रयास न करें, यह मेरी आपसे सानु-रोध प्रार्थना है, अन्यथा बहुत बड़ा अनर्थ होजाएगा । मुझे त्रिगर्तराज ने ललकारा है । मुझे आज इसे यमपुरी पहुँचानाहोगा । आपके युद्ध-स्थल से हटजाने पर द्रोण का कार्यक्रम स्वयँ विफल होजाएगा ।”

त्रिगर्तराज अर्जुन को ललकारकर इतनी दूर निकलगया कि जिससे वह युधिष्ठिर की रक्षा के लिए न आसकें । अर्जुन श्रीकृष्ण से बोले, “कृष्ण ! मालूम देता है त्रिगर्तराज के सिरपर काल मँडाररहा है ।”

कृष्ण ने रथ लेजाकर त्रिगर्तराज के सम्मुख खड़ाकरदिया । अर्जुन की सेना ने त्रिगर्तराज की व्यूह-रचना को छिन्न-भिन्न करदिया । उसकी सेना भागखड़ीहुई । H83/115D .

उन्हें परास्तकर अर्जुन युधिष्ठिर की ओर बढ़े, परन्तु मार्ग में दुर्योधन अपनी असंख्य सेना लेकर आगया । अर्जुन प्रलय के समान उसपर टूटपड़े । दुर्योधन की सेना काई की तरह फटगई । वह तनिक और आगे बढ़े तो भगदत्त से युद्ध करनापड़ा । भगदत्त ने अपने मस्त हाथी ऐरावत को अर्जुन के रथ की दिशा में छोड़दिया ।

कृष्ण ने तीव्रता से अपने रथ को बचालिया और अर्जुन ने ऐरावत हाथी को मारगिराया । यह देखकर भगदत्त पागल की भाँति अर्जुन पर टूटपड़ा । अर्जुन ने एक ऐसा वाण छोड़ा कि भगदत्त की आँतें बाहर निकलआई और वह यमलोक सिधारगया । P.G.H 3333

उधर द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर के अंग-रक्षकों पर प्रखर प्रहार किया । द्रोण की वाण-वर्षा ने पांडव-सेना को व्याकुल करदिया था । द्रोण के इस रूप को देखकर युधिष्ठिर के अंग-रक्षक भी आँधी के समान उनपर टूटपड़े । सत्यजित के वाणों ने द्रोण के रथ के घोड़ों को मारकर

भूमि पर गिरादिया । उनके सारथी को भी सत्यजित ने आहत कर दिया था ।

आज सत्यजित की वीरता को देखकर द्रोण आश्चर्यचकित रह गए । द्रोण ने अपनी प्रतिज्ञा को भंग होते देख सत्यजित पर अर्धचन्द्रास्त्र से प्रहार किया । इस प्रहार से सत्यजित मारा गया ।

सत्यजित को गिरते देखकर धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध-भूमि से हट गए । युधिष्ठिर को अपने समक्ष न देख द्रोण क्रोध में पागल हो उठे और पांडव-सेना का बुरीतरह संहार करने लगे । उन्होंने कितने ही पांचालों को नष्ट कर दिया ।

तभी अर्जुन वहाँ आपहुँचे । उन्होंने द्रोण का यह रौद्र-रूप देखकर कौरव-सेना का विध्वंस करना प्रारम्भ किया । अर्जुन के तीरों की मार ने मैदान खाली कर दिया ।

लड़ते-लड़ते सूर्यास्त होगया और शांति-शंख बज उठा ।

कौरव-दल की आज करारी हार हुई । भागदत्त की मृत्यु का शोक समस्त कौरव-दल में छा गया और त्रिगतराज की पराजय ने तो उनके घुटने ही तोड़ दिए ।

दुर्योधन अब हताश हो उठा था । उसकी सेन्य-शक्ति पांडवों से कम रह गई थी । उसकी निराशा का पारावार नहीं रहा था । उसके लगभग पचास से ऊपर भाई रण में खेत रहे थे । उसके बड़े-बड़े वीरों का विनाश हो चुका था । वह विह्वल होकर आचार्य द्रोण के शिविर में जाकर बोला, “आश्चर्य ! यदि युद्ध का यही रूप रहा तो हमारी पराजय निश्चित है । आपकी पांडवों के प्रति ममता ही हमारे विनाश का मूल कारण है । यदि आपने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न की तो मैं समझूँगा कि आप हमारे पक्ष की ओर से नहीं, पांडव-पक्ष की ओर से युद्ध कर रहे हैं ।”

दुर्योधन के वचन सुनकर आचार्य द्रोण मर्महित हो उठे । वह क्रुद्ध

होकर बोले, “देर्योधन ! होश की बातें करो ! मेरे वाणों से कल सत्यजित की मृत्यु हुई । उसके पश्चात् धर्मराज युद्ध-भूमि से हटगए । नीति-कुशल कृष्ण उनके साथ हैं । उनकी चतुराई को समझना तुम्हारे लिए असम्भव है । तभी पराक्रमी अर्जुन त्रिगर्तो पर विजय प्राप्तकर वहाँ आपहुँचा । क्या तुम मेरे साथ नहीं थे जो ऐसी बातें कर रहे हो ? मैंने अपनी करनी में क्या उठा रखा था ? द्रोण विश्वासघात नहीं कर सकता, मृत्यु को प्राप्त होसकता है ।

मैं कल चक्र-व्यूह की रचना करूँगा । यदि कल कोई अर्जुन को यहाँ से दूर हटालेगा तो निश्चय समझो कि इस व्यूह में किसी पांडव वीर का निधन होगा ।”

उस दिन रात्रि भर द्रोण चक्र-व्यूह की रचना कराते रहे । प्रातः काल होते ही दोनों सेनाएँ रण-भूमि में उतरपड़ीं । आज अर्जुन को फिर चित्रगर्त और सप्तसर्पों ने ललकारा था । अर्जुन उनसे लड़तेहुए बहुत दूर निकलगए थे ।

इधर द्रोण द्वारा चक्र-व्यूह की रचना का समाचार प्राप्तकर युधिष्ठिर चिंतित थे । तभी उनके समक्ष अभिमन्यु आकर बोला, “धर्मराज ! चिंतित न हों, मैं व्यूह-भेदन करना जानता हूँ । उससे बाहर निकलना नहीं जानता । परन्तु जब व्यूह को भेद-दूँगा तो बाहर निकलना कौन दुष्कर कार्य होगा ? मुझे आज्ञा हो तो मैं द्रोण के चक्रव्यूह का भेदन करूँ ।”

धर्मराज युधिष्ठिर ने अभिमन्यु को सेनापति-पद से आभूषित किया ।

धर्मराज से आज्ञा प्राप्तकर अभिमन्यु उत्तरा से अंतिम विदा लेने उत्तरा के शिविर में गया और सहर्ष बोला, “उत्तरा ! आज तुम्हारे पति अभिमन्यु को पांडव-सेनापति बनने का स्वर्ण अवसर प्राप्तहुआ है । द्रोण ने पिताजी की अनुपस्थिति में चक्र-व्यूह-रचना कर पांडवों पर विजय प्राप्त करने का स्वप्न देखा है । तुम देखना कि मैं आचार्य के संकल्प को किस प्रकार विफल बनाकर संध्या को शिविर में लौटता हूँ ।”

उत्तरा का हृदय अभिमन्यु की वाणी सुनकर भयभीत हो उठा । वह बोली, “प्राण-धन आज मैंने बहुत बुरा स्वप्न देखा है । मैंने स्वप्न में देखा है कि सात कौरवों ने मिलकर आपको छल-बल से मार डाला । मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप आज रण-भूमि में न जाएँ ।”

अभिमन्यु उत्तरा को अपनी छाती से लगाकर बोला, “प्राणाधिके ! वीर क्षत्राणी होकर यह तुम क्या कह रही हो ? यह पांडव-कुल की मर्यादा का प्रश्न है उत्तरे ! क्या तुम चाहती हो कि तुम्हारे पति का नाम कायरों की श्रेणी में लिया जाए ?”

उत्तरा ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने पति को विदा दी ।

उत्तरा से विदा लेकर अभिमन्यु अपनी माता सुभद्रा के पास गया और उनके चरण छूकर विदाली ।

उसके पश्चात् वह वहाँ से माता पांचाली के पास पहुँचा । पांचाली ने अभिमन्यु को छाती से लगालिया और नेत्रों में आँसू भरकर बोली, “पांडव-कुल के सबसे छोटे वीर सेनानी ! कौरव-कुल का विध्वंस करो और हमारे हृदयों में जलने वाली भीषण ज्वाला को शांति प्रदान करो । तुम्हारी कीर्ति अमर हो ।”

अभिमन्यु ने समरभूमि की ओर प्रस्थान किया तो उत्तरा के नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह चली । उसने रात्रि को जो भयानक स्वप्न देखा था, वह साकार उसके नेत्रों की पुतलियों में उतर आया । उत्तरा का हृदय विदीर्ण हो उठा ।

माता सुभद्रा ने शोकातुर उत्तरा को अपनी अंकों में भर लिया । वह अश्रुपूर्ण नेत्रों से बोली, “बेटी उत्तरा ! जिस प्रकार अभिमन्यु तेरा पति है उसी प्रकार वह मेरे भी कलेजे का टुकड़ा है । अभिमन्यु के प्राणों का मोह जितना तुझे है, उससे कम मुझे भी नहीं है । परन्तु इस कठिन समय में क्षत्रियोचित कर्तव्य का पालन करना हमारा धर्म है । अभिमन्यु विजय प्राप्त करके लौटे, हमें यही शुभ कामना करनी चाहिए ।

शोकनिमग्न उत्तरा सकरुण वाणी में बोली, “मैं अपने कर्तव्य से अपरिचित नहीं हूँ माताजी ! परन्तु रात्रि को जो स्वप्न मैंने देखा था वह मेरे हृदय को विदीर्ण किएडाल रहा है । मेरे नेत्रों के सम्मुख अंधकार छारहा है । मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा ।” इतना कहकर उत्तरा अचेत होगई ।

माता सुभद्रा ने उत्तरा को अपनी अंग में भरकर पलंग पर लिटा दिया । सुभद्रा का हृदय उत्तरा की यह दशा देखकर अधीर हो उठा ।

अभिमन्यु अपनी सेना के साथ, उत्साह से पूर्ण, चक्र-व्यूह की दिशा में बढ़ गया ।

अभिमन्यु को आते देख कौरव-दल अभिमन्यु पर दूटपड़ा, परन्तु अभिमन्यु ने उनके होश उड़ा दिए । अभिमन्यु की भीषण वाण-वर्षा ने शत्रु-दल को बुरी तरह हताहत कर दिया । द्वार-रक्षक जयद्रथ को पछाड़कर अभिमन्यु व्यूह में घुस गया और उसके भयंकर युद्ध से वहाँ प्रलय-काल उपस्थित होगया ।

अभिमन्यु ने तो चक्रव्यूह में प्रवेश कर लिया, परन्तु उसके अंग-रक्षक व्यूह में प्रवेश न पा सके ।

कौरवों ने अपने ध्वस्त व्यूह को फिर से ठीक कर लिया ।

अभिमन्यु अकेला ही व्यूह में अपना पराक्रम दिखाने लगा । अभिमन्यु के सम्मुख दुर्योधन न ठहर सका तो कर्ण उसकी रक्षा के लिए आ गया । अभिमन्यु के भयंकर युद्ध से त्रस्त होकर दुर्योधन भाग खड़ा हुआ ।

दुर्योधन के भागते ही अभिमन्यु ने विजय-शंख धूँक दिया, और वह आगे बढ़-बढ़कर शत्रु-सेना का संहार करने लगा । शत्रु अभिमन्यु की ओर बढ़े तो अभिमन्यु के अचूक वाणों ने उन्हें मूर्छित कर दिया ।

दुर्योधन ने यह दशा देखी तो वह भयभीत हो उठा और उसने अपने सेनिकों को ललकारा । वह क्रोधपूर्ण वाणी में बोला, “वीरो !

आचार्य द्रोण से सहायता की आशा छोड़दो। वह अपने शिष्य अर्जुन के पुत्र का पराक्रम देखकर युद्ध-धर्म को भूलबैठे हैं। तुम सब मिलकर एक साथ इसपर आक्रमण करो।”

दुर्योधन की ललकार सुनकर दुःशासन आगे बढ़ा, परन्तु अभिमन्यु के समक्ष वह ठहर न सका। उसका सारथी उसके प्राणों की रक्षा के लिए रथ को दौड़ाकर भागखड़ा हुआ।

अभिमन्यु ने दुर्योधन-सुत लक्ष्मण और शल्य-सुत सव्य को मौत के घाट उतार दिया। यह देखकर कर्ण अभिमन्यु के समक्ष आडटा।

दुर्योधन आचार्य द्रोण से बोले, “आचार्य ! आप इसे बालक जानकर इसपर दया न करें। यह कौरवों का काल बनकर आया है।”

द्रोण बोले, “दुर्योधन ! मैं तुम्हारे व्यंग्य-वाणों की चिन्ता न कर अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ। अभिमन्यु के हाथों में जब तक अस्त्र-शस्त्र हैं, इसे पराजित करना असम्भव है। तुम किसी प्रकार इसके अस्त्र रखवालो तो इसका निधन सम्भव होसकता है।”

द्रोण का आदेश सुनकर सब कौरव-महारथी मिलकर अभिमन्यु पर दूटपड़े। चारों ओर के आक्रमण का अभिमन्यु ने डटकर सामना किया। परन्तु इस महायुद्ध में उसके सब अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न हो गए। उसका सारथी मारा गया। उसका रथ भी दूट गया। उसके घोड़े मरकर भूमि पर गिरपड़े।

तब दुःशासन के पुत्र ने अभिमन्यु के सिर पर गदा का प्रहार किया। अभिमन्यु भूमि पर गिरपड़ा और कौरव महारथी उस पर दूटपड़े। अभिमन्यु को इस प्रकार अधर्म से मारकर कौरवों ने विजय-घोष किया।

कौरवों का विजय-घोष सुनकर पांडव-सेनिक भयभीत होकर शिविर की दिशा में भागने लगे। युधिष्ठिर यह समाचार पाकर अधीर होउठे और गरजकर बोले, “वीरो ! भागते क्यों हो ? वीरता और शौर्य से कौरव-दल पर प्रलय बनकर छाजाओ।”

धर्मराज की ललकार सुनकर पांडव-पक्ष के उखड़ते हुए पैर जम गए और प्रलयकारी युद्ध छिड़गया। पांडवों का यह आक्रमण बड़े वेग से हुआ, जिसके समक्ष कौरव न ठहरसके।

संध्या होने पर शांति-शंख बजा और पांडव-सेना ने अपने शिविर की ओर मुख किया तो युधिष्ठिर के बढ़तेहुए कदम रुक गए। उनके नेत्रों के सम्मुख घोर अंधकार छागया। आज पांडव-कुल के दीपक को उन्होंने अपने हाथ से बुझा दिया था।

अर्जुन युद्ध से लौट रहे थे तो अनेकों अमंगल-सूचक घटनाएँ उनके समक्ष आईं। कौरवों के शिविर में होनेवाला विजय-घोष उनके कानों में पड़ रहा था। कृष्ण समझ गए कि अभिमन्यु वीर-गति को प्राप्त हो गया। उन्होंने रथ की गति को तीव्र कर दिया और सीधे उसी स्थान पर पहुँचे जहाँ अभिमन्यु का शव पड़ा था। सुभद्रा शव को अंक में लिए प्रलाप कर रही थीं और उत्तरा अचेत पड़ी थी। करुणा मूर्तिमान रूप में समक्ष खड़ी थी। अर्जुन के चारों भाई भी वहीं थे।

अर्जुन और कृष्ण को समक्ष देखकर सुभद्रा के धैर्य का बाँध टूट गया। वह रो-रोकर पगलीसी हो उठी थी। अर्जुन ने अभिमन्यु का शव रक्त में लथपथ देखा तो वह भी खड़े न रहसके। उनका हृदय विदीर्ण होगया। भीम ने रो-रोकर उन्हें आज की स्थिति बताई।

कृष्ण क्रोधित होकर बोले, “धिक्कार है तुम्हें द्रोण ! तुमने निशस्त्र बालक को अपने समक्ष इस प्रकार अधर्म से मरते देखा। तुमने अभिमन्यु को छल से मारा है तो तुम्हें भी इसका भोग भोगना होगा। सात-सात महारथियों ने मिलकर एक बालक के प्राण लिए।

अर्जुन ! उठो और प्रलयकर रूप धारण करो।”

कृष्ण के वचन सुनकर अर्जुन के नेत्र रक्तपूर्ण हो उठे। वह सक्रोध वाणी में बोले, “अपने पुत्र के एक-एक हत्यारे को मैं जबतक मृत्यु के घाट न उतार दूँगा, तब तक मेरे हृदय को शांति प्राप्त न होगी।”

अर्जुन ने दूसरे दिन जयद्रथ को सूर्यास्त से पूर्व मृत्यु के घाट उतारने का प्रण किया क्योंकि उसी ने व्यूह के सिंहद्वार पर रहकर अभिमन्यु के अंग-रक्षकों को व्यूह में प्रवेश नहीं करने दिया था। अर्जुन बोले, “कृष्ण ! जिस जयद्रथ को हमने बंदी बनाकर भी प्राण-दान दिया उसी ने आज हमें यह दिन दिखाया। मैं आपकी सौगंध खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल सूर्यास्त से पूर्व या तो उसे यमपुरी पहुँचा दूँगा, अन्यथा स्वयँ चितापर जलकर भस्म हो जाऊँगा।”

कृष्ण ने देखा कि अर्जुन इस समय रोद्रावतार से प्रतीत हो रहे थे।

कौरवों के गुप्तचरों ने जयद्रथ को जाकर अर्जुन के प्रण की सूचना दी तो वह काँप उठा। वह तुरन्त दुर्योधन के शिविर में पहुँचा और भयभीत वाणी में बोला, “महाराज ! अब आप या तो मेरी रक्षा करें, अन्यथा मुझे अपने देश लौट जाने की आज्ञा प्रदान करें। आप कहें तो मैं कहीं किसी घर में जाकर छिप जाऊँ। कल अर्जुन जब मुझे नहीं पा सकेगा तो वह स्वयँ जलकर भस्म हो जाएगा और आपकी विजय निश्चित हो जाएगी।”

दुर्योधन आज अपनी विजय के अभिमान में फूला नहीं समारहा था। अभिमन्यु को मारकर वह अपने पुत्र-शोक को भूल गया था। वह सगर्व बोला, “क्या कायरों जैसी बातें करने लगे जयद्रथ ! तुम घर भाग जाओगे तो हमारे मस्तक पर कलंक का टीका लगेगा। कल हमारी सम्पूर्ण सेना और हमारे सब महारथी तुम्हारी रक्षा में रहेंगे। मैं अभी जाकर आचार्य द्रोण से मिलता हूँ। कल ऐसे व्यूह की रचना की जाएगी जिसमें कोई परिन्दा भी तुम्हारे पास तक न फटक सके।”

दुर्योधन की आशापूर्ण बात सुनकर जयद्रथ के हृदय में तनिक धैर्य बँधा, परन्तु अन्दर से उसकी आत्मा भयभीत ही रही।

६

दुर्योधन का मन आज की द्रोणाचार्य की वीरता और नीति-कुशलता को देखकर आनंद और उत्साह से भर उठा था। उसे अब अपनी विजय में कोई आशंका नहीं रही थी। उसे विश्वास हो गया था कि द्रोण जयद्रथ के प्राणों की रक्षा में पूर्ण सफल होंगे और फलस्वरूप अर्जुन स्वयं चितापर जलकर प्राण त्याग देगा। अर्जुन के मरते ही पांडवों की शक्ति समाप्त हो जाएगी और फिर युद्ध-भूमि में कौरवों की विजय-पताका फहराएगी।

दुर्योधन द्रोण के शिविर में पहुँचा और उनसे भेंट करके बोला, “आचार्य! आज पहिला दिन है जब हम गर्व से अपना मस्तक ऊँचा करके चल पाए हैं। आपकी नीति-कुशलता ने हमें यह दिन दिखाया है। यदि कल आप शकट-व्यूह की रचना कर जयद्रथ के प्राणों की रक्षा में सफल हो जाएँ तो फिर हमारी विजय को कोई नहीं रोक सकता।”

द्रोण के हृदय में आज अभिमन्यु के अधर्मपूर्ण निधन का काँटा बुरी तरह खटकर रहा था। उन्हें दुर्योधन की प्रशंसा भली नहीं लगी, परन्तु ऊपर से उन्होंने उत्तर दिया, “दुर्योधन! मुझसे जितना भी जयद्रथ की प्राण-रक्षा का प्रयत्न होगा उसे करने में कोई कसर उठा नहीं रखूँगा।”

दुर्योधन वहाँ से प्रसन्न होकर चला आया। अर्धरात्रि में शकट-व्यूह की रचना कर जयद्रथ को उसके पिछले भाग में सुरक्षित रखा गया।

कृष्ण ने पांडव-पक्ष के सब महारथियों को एकत्रित कर आगामी दिन की युद्ध-नीति प्रसारित की। रात्रिभर कृष्ण और अर्जुन को नींद नहीं आई।

प्रातःकाल होते ही पांडव-सेना मैदान में उतरी तो उन्होंने देखा कि आचार्य द्रोण ने उनके समक्ष शकट-व्यूह की रचना की हुई थी। आज महायुद्ध का चौदहवाँ दिन था।

रण-दुन्दभी बजउठी । युद्ध प्रारम्भ हुआ । अर्जुन का रथ तीर के समान दौड़कर कौरवों के दुर्भेद्य शकट-व्यूह के सिंहद्वार पर जा पहुँचा । आचार्य द्रोण सिंहद्वार की रक्षा कर रहे थे ।

अर्जुन ने आचार्य से व्यूह में प्रवेश की आज्ञा माँगी तो द्रोण मुस्कराकर बोले, “अर्जुन ! यह गुरु-द्वार नहीं, युद्ध-व्यूह का द्वार है । इसके अन्दर प्रवेश प्राप्त करना हमारी आज्ञा पर नहीं, तुम्हारी शक्ति पर निर्भर करता है ।”

फिर क्या था ? द्रोण और अर्जुन का भीषण युद्ध छिड़ गया ।

आचार्य द्रोण और कृप ने इतना घनघोर युद्ध किया कि अर्जुन का बहुत सा समय वहीं निकल गया । अर्जुन ने सोचा कि वहाँ उनसे जूझते-जूझते तो सूर्य अस्त होजाएगा और पापी जयद्रथ का संहार न हो सकेगा । उन्होंने चुपके से कृष्ण को अपना रथ वहाँ से हटाकर अन्यत्र ले-चलने को कहा ।

अर्जुन के रथ को घूमते देख द्रोण बोले, “क्या वीर अर्जुन अपनी वह प्रतिज्ञा भूल गया कि सम्मुख आए शत्रु को हराए बिना वहाँ से नहीं हटेगा ।”

अर्जुन दौड़ते हुए रथ पर खड़ा होकर बोला, “अर्जुन का वह प्रण गुरु के लिए नहीं है ।”

द्रोण ने अर्जुन का पीछा किया, परन्तु अर्जुन भीषण मार-काट करता हुआ आगे निकल चुका था ।

अर्जुन को वहाँ से हटकर व्यूह में प्रवेश करते देख दुर्योधन भयभीत हो उठा । उसके क्रोध का पारावार न रहा । वह सक्रोध आचार्य द्रोण से बोला, “गुरुवर ! यदि अर्जुन पर इतनी ममता थी तो जयद्रथ को अभय-दान न दिया होता । अब अर्जुन को जयद्रथ के पास पहुँचने से कीन रोक सकता है ? यदि आप मन से लड़ते तो क्या वह इस प्रकार व्यूह में प्रवेश कर पाता ?”

दुर्योधन की यह बात सुनकर आचार्य द्रोण के हृदय में क्रोध की ज्वाला जल उठी। वह बोले, “दुर्योधन ! मैं अब वृद्ध होगया हूँ। मैं ही नहीं कृष्ण और अर्जुन को संसार में कोई परास्त नहीं करसकता। मैं तुम्हें अभेद्य कवच पहिनाता हूँ तनिक तुम स्वयं जाकर उनके बल और शौर्य की परीक्षा लेसको। तुम्हारे बदन पर किसी अस्त्र का प्रभाव न होगा।” यह कहकर द्रोण ने दुर्योधन का बदन अभेद्य कवच से ढकदिया।

दुर्योधन अर्जुन से लोहालेने चला और पांडवों ने आचार्य द्रोण पर आक्रमण करदिया। कौरव-सेना अपने प्राणों को लेकर भागखड़ीहुई। आचार्य ने कुपित होकर धृष्टद्युम्न पर विकराल वाण छोड़ा, परन्तु उसने उसे बीच में ही काटदिया।

द्रोण को पांडवों ने इधर घेरलिया और दूसरी ओर अर्जुन जयद्रथ के निकट पहुँचगया। अर्जुन को जयद्रथ के निकट देखकर दुर्योधन भयभीत होउठा। अर्जुन ने दुर्योधन पर आक्रमण किया, परन्तु अस्त्र विफल हुए। वह समझगए कि द्रोण ने उसे अभेद्य कवच देकर भेजा था। अर्जुन ने दुर्योधन के हाथों को कवच से बाहर देखकर उन्हीं को निशाना बनाया और उसके दोनों हाथ बेकार करदिए।

अर्जुन ने उग्र रूप धारणकर कौरव-सेना को रूई के समान धुनना प्रारम्भ किया। उस समय सम्पूर्ण कौरव-सेना उसी ओर को झुक पड़ी थी।

यह भयंकर स्थिति देखकर कृष्ण ने पांचजन्य शंख फूँका। शंख की ध्वनि युधिष्ठिर के कानों में पड़ी तो वह सात्यकि से बोले, “सात्यकि ! वह असंख्य सेना अर्जुन पर आक्रमण करने जा रही है। तुम तुरन्त अर्जुन की रक्षा के लिए पहुँचो। तुम मेरी चिंता छोड़दो।”

सात्यकि अर्जुन की सहायता के लिए दौड़ा तो द्रोण उसके सम्मुख आगए। सात्यकि ने द्रोण के रथ, घोड़े और सारथी सभी को समाप्त करदिया। यह देखकर द्रोण क्रोध से पागल होउठे। वह बोले, “सात्यकि !

देख रहा हूँ तेरे सिरपर काल मँडरारहा है। यदि तू अर्जुन की भाँति भाग न खड़ाहुआ तो आज तुझे यमलोक पहुँचादूँगा।”

सात्यकि बोला, “जब मेरे गुरु अर्जुन आपके सामने से हट गए तो मैं भला क्या हूँ आपके समक्ष ? आचार्य के समक्ष भला मैं क्या डटसकता हूँ ?” इतना कहकर उसने अपना रथ घुमा दिया। वह कौरवों की अपार सेना को चीरताहुआ अर्जुन के पास जा पहुँचा।

युधिष्ठिर ने भीम से कहा, “भीम ! अर्जुन संकट में है। तुम तुरन्त उसकी रक्षा के लिए जाओ। सिंहद्वार से न जाकर व्यूह में इधर-उधर से घुसो।”

भीम अपने भीमसेनी शंख को बजाताहुआ व्यूह में घुस गया और शत्रु-सेना को भूमि पर बिछाताहुआ अर्जुन के पास जा पहुँचा। भीम-सेनी-शंख का शब्द कौरवों के कानों में पड़ा तो कौरव-सेना काई की तरह फटतीचली गई।

भीम के शंख-रव को सुनकर अर्जुन ने प्रत्युत्तर में अपना शंख बजाया। अर्जुन का हृदय कौरव-दल को भागते देखकर हर्ष से भर उठा। अर्जुन और भीम की शंख-ध्वनि धर्मराज ने सुनी तो उनके व्याकुल हृदय को शांति मिली और तभी उन्होंने कौरव-दल को भागते देखा।

भीम को अर्जुन के निकट पहुँचते देखकर दुर्योधन के इक्कीस भाइयों ने एक साथ मिलकर भीम पर आक्रमण किया। भीम ने इक्कीस के इक्कीस को यमपुरी पहुँचा दिया। यह देखकर कर्ण भीम पर दूटपड़ा। दोनों का घमासान युद्ध प्रारम्भ होगया। कर्ण के सम्मुख भीम न ठहर सके। वह घायल होकर भूमि पर गिरपड़े। कर्ण भीम को मारने को लपका तो उसे माता कुन्ती को दिया गया अपना वचन याद आ गया। वह ठिठककर पीछे हट गया और हँसकर बोला, “भीम ! हो चुकी तुम्हारी वीरता की परीक्षा। जाओ अपने शिविर को भाग जाओ।”

तब तक भीम को तनिक साँस आ गया। उसने कर्ण का धनुष

लेकर टुकड़े-टुकड़े करडाला और खुम ठोककर बोला, “कर्ण ! हार-जीत अवसर की होती है । मल्ल-युद्ध में दो-दो हाथ होजाएँ ।”

कर्ण भीम के मल्ल-युद्ध से परिचित था । भीम की भुजाओं में फँसजाना काल के मुख में जाने के समान था । उससे मल्ल-युद्ध करना उसके लिए सम्भव न था ।

तभी सात्यकि सामने से आतादिखाईदिया । भूरिश्रवा ने सात्यकि को देखकर उसपर आक्रमण करदिया । सात्यकि युद्ध करते-करते थक-गया था । भूरिश्रवा ने सात्यकि का रथ छिन्न-भिन्न करदिया । भूरिश्रवा सात्यकि पर तलवार का वार करना ही चाहता था कि अर्जुन के वारण ने उसके दोनों हाथों को काटदिया ।

भूरिश्रवा अर्जुन से बोला, “अर्जुन ! तुमने यह धर्म-विरुद्ध कार्य छलिया कृष्ण के कहने से किया । जब मैं तुमसे युद्ध नहीं कर रहा था तो तुमने मुझपर वार क्यों किया ?”

अर्जुन बोले, “भूरिश्रवा ! गिरेहुए सात्यकि पर तलवार लेकर झपटना कहाँ का धर्म है ? सात महारथियों का मिलकर अस्त्रविहीन अभिमन्यु को मारना कहाँ का धर्म था ? क्या तुमलोग भी धर्म की दुहाई देने का मुँह रखतेहो ?” यह सुनकर भूरिश्रवा मौन होगया और शर-शय्या पर बैठकर प्राण त्याग देने का निश्चय किया ।

कृष्ण ने विरथ सात्यकि और भीम को भी अपने ही रथ पर बिठाकर रथ आगे बढ़ाया और ठीक जयद्रथ के रथ के पास पहुँचगए । अर्जुन के रौद्र रूप को देखकर दुर्योधन भय से काँपउठा । उसने कर्ण से कहा, “कर्ण ! आगे बढ़कर अर्जुन को रोको ।”

कर्ण बोला, “मेरा अंग अंग भीम ने तोड़दिया है । मैं बहुत थक रहा हूँ । फिर भी तुम्हारी आज्ञा का उलंघन नहीं करसकता ।”

अर्जुन शंख बजाकर बाज की तरह शत्रु-सेना पर दूटपड़े । रक्त की सरिता बहचली । शवों के ढेर लगगए । कौरव-दल हताश होकर

भागखड़ाहुआ, परन्तु तभी सबने देखा कि सूर्य पश्चिम दिशा की लालिमा के निकट जा पहुँचा था ।

कौरव-महारथियों ने जयद्रथ को अपने पीछे किया और उसकी रक्षा का युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया । दोनों ओर से ऐसी वाणों की वर्षा हुई कि आकाश तीरों से आच्छादित होगया और भूमि पर अंधकार छा गया । अर्जुन ने दिव्यास्त्र द्वारा आकाश को और भी अंधकारपूर्ण कर दिया ।

सबके देखते-देखते सूर्य अस्त होगया और शान्ति-विगुल बजगया ।

शान्ति-विगुल बजते ही जयद्रथ निकलकर बाहर आगया और अर्जुन से बोला, “अर्जुन ! अब यह गांडीव मेरे हवाले करो और चिता पर जलने के लिए उद्यत हो जाओ ।”

अर्जुन का मुख पीला पड़गया था । उसके हाथ से गांडीव छूटपड़ा । कृष्ण ने गांडीव अपने हाथ में उठालिया ।

अर्जुन के चिता पर जलने की तय्यारी होने लगी । पांडव-पक्ष शोकानुर हो उठा । कौरव-पक्ष में हर्ष-नाद गूँज उठा ।

कौरवों को लापरवाह करने के लिए कृष्ण बोले, “धर्मराज युधिष्ठिर ! चिता में अग्नि प्रज्वलित करो । आपका भाई वीर-गति को प्राप्त हो रहा है । हताश होने की आवश्यकता नहीं है ।”

धर्मराज युधिष्ठिर ने काँपते हाथों से चिता में अग्नि प्रज्वलित की ।

कृष्ण अर्जुन से गले मिले और गम्भीर वाणी में बोले, “अर्जुन ! चिता पर बैठकर अपना प्रण पूरा करो । तुम अपनी प्रथम प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकें, तो दूसरी प्रतिज्ञा निभाओ ।”

अर्जुन चिता की ओर बढ़े तो जयद्रथ निकलकर सबसे आगे आगया और हँसकर बोला, “क्या भय लग रहा है अर्जुन ! अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने में ?”

अर्जुन मौन चिता की ओर बढ़ते गए । कृष्ण अपने हाथ में गांडीव सँभाले उनके साथ थे ।

अर्जुन चिता में बैठने से पूर्व एक बार फिर कृष्ण से गले मिले । कृष्ण मुस्कराकर पश्चिम दिशा की ओर आकाश पर देखकर गांडीव अर्जुन की ओर बढ़ाते हुए बोले, “अर्जुन ! जयद्रथ तुम्हारे समक्ष है । सूर्य देवता पश्चिम दिशा में मुस्कराकर कह रहे हैं । तुम्हारा बलि-पशु तुम्हारे समक्ष खड़ा है । फिर क्या देर है बलि देने में ?”

अर्जुन की दृष्टि पश्चिम-दिशा में मुस्कराते हुए सूर्य पर पड़ी और फिर जयद्रथ पर । उन्होंने श्रीकृष्ण के हाथ से गांडीव लेकर तरकश से तीर निकाला और एक ही तीर से जयद्रथ का शीश घड़ से अलग कर दिया ।

आकाश में सूर्य को देखकर कौरव-गण भौंचक्के रह गए । कृष्ण ने पांचजन्य-शंख बजाकर अपने शिवर में विजय-संदेश भेजा । तभी अर्जुन का देवदत्त शंख बज उठा । “जयद्रथ मारा गया” की ध्वनि वायुमंडल में आच्छादित होगई । पांडव-शिविर में हर्षसूचक बाजे बज उठे । अर्जुन के सब भाइयों ने अर्जुन का अभिनन्दन किया । श्रीकृष्ण की नीति-कुशलता की सराहना से पांडव-पक्ष गद्गद हो उठा ।

जयद्रथ की मृत्यु से कौरव-पक्ष शोक-सागर में डूब गया । दुर्योधन की निराशा का कोई पारावार नहीं था । भीम ने आज उसके इक्कीस भाइयों को मौत के घाट उतार दिया था । भूरिश्रवा का भी आज निधन हो गया था और अन्त में उसका बहनोई जयद्रथ भी मृत्यु को प्राप्त हुआ था ।

दुर्योधन जला-भुना आचार्य द्रोण के शिविर में पहुँचा और क्रोधा-वेश में बोला, “गुरुवर ! आपने क्या सचमुच हमारा सर्वनाश कराने का निश्चय कर लिया है ? आप जैसा योद्धा हमारा सेनापति होने पर भी हमारी हार होती-जारही है । हमारी सेना भी अब पांडवों से

बहुत कम रहगई है । आपका पांडवों से इतना अधिक मोह है तो स्पष्ट कहदीजिए, जिससे हम अपना कोई अन्य प्रबन्धकरें ।”

दुर्योधन की यह बात सुनकर आचार्य द्रोण क्रोधित होकर बोले, “दुर्योधन ! तुम बराबर मेरी भर्त्सना करते चलेजारहेहो । मुझपर पक्षपात का दोष रखरहेहो । तुम्हारा अन्न-भोगी होने के कारण मैं न्याय के विरुद्ध अस्त्र उठारहा हूँ । तुम्हारे साथ मैं भी पाप का भागी बनरहा हूँ । तुम्हारी पराजय का कारण मैं नहीं, तुम्हारा अधर्म है । कल सात महारथियों ने मिलकर अस्त्र-विहीन अभिमन्यु को मारडाला । क्या उसका फल तुम्हें न भुगतनापड़ता ? तुम्हारी पराजय और तुम्हारे सर्वनाश को ब्रह्मा भी नहीं रोकसकता । विष बोकर तुम अमृत-फल प्राप्त करने की आशा करतेहो ?”

द्रोण की करारी फटकार सुनकर दुर्योधन नतमस्तक होगया । वह चुपचाप अपने शिविर को लौटगया ।

दूसरे दिन द्रोण ने युद्ध में जो उग्र रूप धारण किया उसे देखकर पांडव भयभीत होउठे । दुर्योधन भी युद्ध में अपना पराक्रम दिखाने से पीछे न रहा, परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर की अनवरत वाण-वृष्टि के सम्मुख दुर्योधन को पीठ दिखाकर भागनापड़ा ।

भीम आचार्य द्रोण से जाकर जूझपड़े । तभी भीम की दृष्टि सोमदत्त पर पड़ी जो पांडव-सेना का वुरी तरह संहार कररहा था । भीम द्रोण को छोड़कर सोमदत्त पर झपटपड़े । भीम की गदा के एक ही प्रहार से सोमदत्त मूर्छित होकर भूमि पर गिरपड़ा । यह देख सोमदत्त के पुत्र ने भीम पर आक्रमण करदिया । भीम ने एक ही प्रहार में उसे मृत्यु के मुख में फेंकदिया । सोमदत्त के पुत्र को गिरते देख दुर्योधन के सोलह भाई भीम पर दूटपड़े । भीम ने उन्हें भी समाप्त कर दिया । आज भीम ने कर्ण के सूत-जात भाई वृषथ और शकुनि के भाई चतचन्द्र को भी यमलोक पहुँचादिया ।

भीम की इस उग्रता को देखकर कर्ण पांडव-सेना पर दूटपड़ा । यह देखकर अर्जुन कर्ण के समक्ष आडटे और दो वाणों से उसके सारथी तथा रथ को चकनाचूरकर कर्ण को निरथ करदिया । कर्ण को इस प्रकार निरथ देख कृपाचार्य अपना रथ दौड़ाकर वहाँ गए और उसे अपने रथ पर बिठा लिया ।

कर्ण ने फिर भयंकर युद्ध करना प्रारम्भ करदिया । अर्जुन उधर बढ़ने लगा तो कृष्ण ने अर्जुन को रोककर घटोत्कच को ललकारा । घटोत्कच ने भयंकर वेग से युद्ध करना प्रारम्भ किया । कौरव-दल में हाहाकार मच गया । कर्ण के छक्के छूट गए और दुर्योधन को दिखाई दिया कि युद्ध का वही अंतिम दिन था ।

दुर्योधन बोला, “कर्ण ! तुम्हारी वह अमोघ-शक्ति कब काम आएगी ? अर्जुन तक पहुँचने का तो यह घटोत्कच तुम्हें अवसर ही नहीं देगा । क्या उसे लिए-लिए ही तुम मृत्यु-लोक को सिधारना चाहते हो ? देख नहीं रहे हो इसने हमारी सारी सेना को काट-काटकर भूमि पर बिछा दिया है ।”

दुर्योधन के ये शब्द सुनकर कर्ण ने अपनी उस अमोघ-शक्ति का घटोत्कच पर प्रहार करदिया, जिसे उसने अर्जुन के लिए सुरक्षित रखा-हुआ था और घटोत्कच संज्ञा-शून्य होकर भूमि पर गिरपड़ा ।

घटोत्कच के मरते ही पांडव-सेना में हाहाकार मच गया । पांडव-सेना भयभीत हो उठी ।

कृष्ण यह देखकर कि कर्ण उस अस्त्र का प्रयोग कर चुका, जिससे वह अर्जुन को मारसकता था, अर्जुन से बोले, “अर्जुन ! अब निर्भीक होकर कर्ण पर आक्रमण करो और इसे इसकी करनी का दण्ड दो ।”

कृष्ण के उत्साहपूर्ण शब्द सुनकर अर्जुन ने कर्ण पर भयंकर आक्रमण किया । अर्जुन के इस आक्रमण ने कौरवों के पैर उखाड़-दिए और उनकी सेना भागखड़ी हुई । अर्जुन ने कृपाचार्य और कर्ण

को निरस्त्र करदिया और उनके रथ, घोड़े तथा सारथी सब समाप्त करके कहा, “जाओ अब दूसरे अस्त्र, रथ, घोड़े और सारथी लेकर कल प्रातःकाल अर्जुन से युद्ध करने आना। पांडव-वीर अर्जुन निरस्त्रों पर बार नहीं करता। वह तुम लोगों की तरह कायर और नीच नहीं है।”

कर्ण और कृपाचार्य गर्दन नीची किए अपने शिविरों को वापस लौट गए।

आज रात्रि को कृष्ण ने फिर पांडव-वीरों को मंत्रणा के लिए निमंत्रित किया और बोले, “अर्जुन ! कल आचार्य द्रोण का वध करना है। द्रोण के रहते युद्ध समाप्त नहीं होसकता। अब युद्ध को और लम्बा करना ठीक नहीं है।”

आज युद्ध में यों कर्ण ने घटोत्कच का वध अवश्य करदिया था परंतु कौरवों की बहुत बड़ी क्षति हुई थी। भीम ने आज दुर्योधन के सोलह भाइयों, मामाओं और आत्मीय जनों को मृत्यु के घाट उतारदिया था। घटोत्कच ने तो उनकी सेना का आज सफाया ही करदिया था।

दुर्योधन ने उस दिन फिर द्रोण के पास जाकर अपनी वही बात दोहराई और बोला, “गुरुदेव ! आप धर्म-धर्म कहकर बराबर पांडवों की रक्षा करते जा रहे हैं। यदि आज रात्रिभर युद्ध होतारहता तो हम रात-रात में पांडवों के दल का सफाया कर डालते।”

दुर्योधन की यह बात सुनकर द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर बोले, “जब तक मैं सेनापति हूँ, मैं धर्म-विरुद्ध कोई कार्य नहीं करूँगा। रात और दिन लड़ते रहना मनुष्यों का काम नहीं है। मैं अपने रहते छल-प्रपंच को प्रश्रय नहीं देसकता। दादा समाप्त हुए। अब मेरी बारी है। इसके पश्चात् तुम्हारी जो इच्छा हो, सो करना। जाओ, अब भविष्य में तुम्हें व्यंग्य-वाण छोड़ने का अवसर न मिलेगा।”

दुर्योधन वहाँसे चला गया। दूसरे दिन युद्ध प्रारम्भ हुआ और लोहे-से-लोहा बज उठा। द्रोण का विकराल रूप देखकर धर्मराज कृष्ण से बोले,

“केशव ! आज द्रोण का रूप बहुत उग्र है । ज्ञात होता है आज दुर्योधन ने इन्हें बहुत अधिक चिढ़ा दिया है । इसीलिए यह प्रचंड अग्नि की वर्षा कर रहे हैं ।”

कृष्ण मुस्कराकर बोले, “दीपक की लौ, बुझने से पूर्व, इसी प्रकार आकाश को चूमती है, इसी प्रकार भड़कती है धर्मराज ! द्रोण का युद्ध-कौशल देखना है, तो देख लीजिए । द्रोण का संरक्षण भीष्म ने किया था, दुर्योधन या धृतराष्ट्र ने नहीं । द्रोण निर्धन उस समय थे जब दादा भीष्म के पास आए थे, इस समय नहीं । फिर क्यों आचार्य द्रोण ने अधर्म का पक्ष लिया ? दादा भीष्म और आचार्य द्रोण ने आपके विरुद्ध युद्ध में भाग लेकर महान् अधर्म-कार्य किया है । अपने उज्ज्वल चरित्रों पर कालिमा पोतली है । दादा भीष्म ने अपनी जीवनभर की अर्जित त्याग और तपस्या की निधि को दुर्योधन के अधर्म की भट्टी में भोंक दिया । उन्होंने ‘पितामह’ और ‘दादा’ शब्दों को कलंकित किया है । आचार्य द्रोण अपने ‘आचार्यत्व’ को कलुषित कर रहे हैं ।

आप कहेंगे कि दादा और द्रोण के हृदय आपके साथ हैं । मैं व्यर्थ समझता हूँ उन हृदयों को जो धर्म के मार्ग पर चलने के लिए व्यक्ति को प्रेरित न कर सकें, वे हृदय नहीं, पत्थर हैं । पांचाली के अपमान को मैं अभी भूला नहीं हूँ । आचार्य कहलाने वाले यह द्रोण गुम-सुम बैठे उस अत्याचार को सहन करते रहे । इनकी आत्मा मिट चुकी थी । दुर्योधन के चन्द टुकड़ों ने इन्हें पथ-भ्रष्ट कर दिया था । इनका ब्राह्मणत्व नष्ट हो चुका और वह आज भी नष्टप्राय है ।

यह पराक्रम दिखाने चले हैं युद्ध-भूमि में । निश्यस्त्र बालक अभिमन्यु का निधन कराते इन्हें लज्जा न आई । निहत्थे बालक पर सात-सात महारथियों को भपटते देखकर उसकी रक्षा के लिए इनके भुज-दण्ड न फड़के । यह अपनी प्रतिज्ञापूर्ण करने का स्वप्न देखते रहे और पांडव-वीर के निधन के स्थान पर पांडव-बालक का निधन करके गर्व से

फूलउठे । धिक्कार है इनके आचार्यत्व और ब्राह्मणत्व को । आज इस कलंक को मिटाना ही होगा धर्मराज !”

धर्मराज अदभ्य उत्साह के साथ आचार्य द्रोण से भिड़ गए । महाराज विराट और द्रुपद भी उनके साथ थे । द्रोण द्रुपद को देखकर आग बगूना होउठे । युद्ध की विकरालता बढ़ गई । द्रोण ने द्रुपद और विराट को अपना प्रधान लक्ष बनाया और उन्हें मृत्यु के घाट उतार दिया ।

द्रुपद का निधन देखकर उनके पुत्र धृष्टद्युम्न ने अपने पिता के घातक द्रोण को मारने की प्रतिज्ञा ली ।

द्रुपद और विराट के निधन से पांडव-दल क्रोधित होउठा । उन्होंने द्रोण पर भयंकर आक्रमण किया, परन्तु द्रोण अडिग रहे । उनके वाणों की वर्षा पांडव-पक्ष का बुरी तरह विध्वंस कर रही थी ।

यह देखकर धर्मराज चिंतित होउठे । कृष्ण उस स्थिति को देखकर बोले, “धर्मराज ! जब तक द्रोण के हाथों में धनुषवाण रहेंगे, उन्हें मारना असम्भव है । इस समय नीति से काम लेना होगा । यदि किसी प्रकार उनके कानों में यह स्वर गूँज उठे कि उनका प्रिय पुत्र अश्वस्थामा मारा गया तो उनके हाथ ढीले पड़ जाएँगे । पुत्र-शोक में विह्वल होकर धनुष-वाण उनके हाथों से गिर पड़ेंगे । तभी उनकी मृत्यु संभव है, अन्यथा नहीं ।”

अर्जुन द्रोण के निधन के लिए इस षडयन्त्र में सम्मिलित होने को उद्यत नहीं थे । कृष्ण ने तभी अवन्ति-नरेश के अश्वस्थामा नामक हाथी का वध करा दिया । भीम ने कृष्ण के संकेत पर उसे मार डाला और युधिष्ठिर को ये शब्द उच्चारण करने पर बाध्य किया, “अश्वस्थामा मृत नरो वा कुंजरो वा ।”

कृष्ण के नीति-संचालन में पांडव-पक्ष अश्वस्थामा हाथी के मरने पर एक स्वर में विल्लाउठा, “अश्वस्थामा मारा गया, अश्वस्थामा मारा गया ।”

द्रोण के कानों में अश्वस्थामा के निधन का स्वर गूँजा तो उन्हें विश्वास न हो सका। उन्होंने कृष्ण का भी विश्वास न किया। वह धर्मराज युधिष्ठिर की वाणी सुनना चाहते थे। युधिष्ठिर को छोड़कर वह अन्य किसी का विश्वास करने को उद्यत नहीं थे।

युधिष्ठिर ने कृष्ण के बताए हुए पूर्वनिश्चित शब्द उच्चारित किए। उनके मुख से ज्योंही यह शब्द निकला, ‘अश्वस्थामा मृत...’ तो कृष्ण ने घन-गर्जन पूर्ण ध्वनि में बाजे बजवा दिए। द्रोण युधिष्ठिर के केवल इतने ही शब्द सुन पाए। उनके धनुष-वाण उनके हाथों से गिर पड़े।

धृष्टद्युम्न अवसर देख रहा था। द्रोण के हाथों से धनुष-वाण गिरते ही उसने उनका सिर उतार लिया और अपने पिता को मृत्यु-लोक पहुँचानेवाले का अन्त कर अपने हृदय में जलनेवाली ज्वाला को शान्त किया।

द्रोण की मृत्यु का समाचार अश्वस्थामा ने सुना तो उसने पांडव-सेना का घोर वध करने की प्रतिज्ञा की और नारायणास्त्र का प्रयोग किया। उससे पांडव-सेना भयभीत हो उठी। कृष्ण उस अस्त्र का प्रतिकार जानते थे। उन्होंने पांडव-सेना को सचेत कर उस अस्त्र का प्रभाव विफल कर दिया।

उस अस्त्र का प्रभाव नष्ट होने पर अर्जुन ने अश्वस्थामा को ललकारा। अश्वस्थामा ने अग्नेयास्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र से अग्नि की वर्षा होने लगी। अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर अश्वस्थामा के अग्नेयास्त्र को ठंडा कर दिया।

यह देखकर अश्वस्थामा रण-भूमि से भाग खड़ा हुआ। उसके भागते ही कौरव-दल के पैर उखड़ गए और उनकी सेना में भगदड़ मँच गई। पांडव-पक्ष ने विजय-दुन्दभी बजा दी।

आचार्य द्रोण की मृत्यु का संवाद जब संजय ने धृतराष्ट्र को दिया तो वह विक्षिप्त हो गए। उन्हें अब अपने पुत्रों की रक्षा की कोई आशा न रही।

कौरव-पक्ष में घोर अतंक छागया । उनका साहस पस्त होगया । दुर्योधन को लगा कि मानो उसके हाथ-पैर सब टूटगए । उसके नेत्रों के सम्मुख अंधकार छागया । भीष्म और द्रोण को मृत्यु के घाट उतारनेवाले पांडवों से वह भयभीत होउठा ।

१०

भीष्म के निधन के पश्चात कर्ण युद्ध-भूमि में गया था, परन्तु आचार्य द्रोण के रहते उसे प्रधान सेनापति बनने का अवसर न मिला । जब द्रोण भी परलोक सिधारगए तो कर्ण ने प्रधान सेनापति के पद को सुशोभित किया । अब उसे पांडवों से सीधा मोर्चा लेने का अवसर मिला ।

दुर्योधन समझता था कि अभी तक कौरवों की पराजय के कारण दादा भीष्म और आचार्य द्रोण थे । उनके हृदय में व्याप्त पांडवों की ममता उन्हें जमकर पांडवों पर प्रहार नहीं करनेदेती थी । फलस्वरूप कौरवों की निरन्तर हार होतीजारही थी ।

कर्ण को सेनापति-पद पर आरूढ़कर दुर्योधन निश्चिन्त होगया । उसे अब भरोसा था कि उसका सेनापति विश्वासपात्र था । वह अपने हृदय में पांडवों के प्रति ममता के स्थान पर द्वेष रखता था । आशा और उमंग से उसका मस्तक ऊपर उठगया था । उसकी छाती उत्साह से फूलउठी थी । कर्ण की वीरता और पराक्रम पर उसे असीम विश्वास था ।

दुर्योधन ने अपने पक्ष में कर्ण के सेनापति होने की घोषणा की तो महाराज शल्य की आत्मा कुंठित होउठी ।

सेना में कुछ उत्साह का संचार हुआ और उन्होंने भीष्म तथा द्रोण की मृत्यु को भुलादेने का प्रयासकिया ।

कर्ण के सेनापति बनने का समाचार वाणों की शय्या पर पड़े भीष्म के कानों में पहुँचा तो उन्होंने एक सेवक को भेजकर दुर्योधन को अपने पास बुलाया और मुस्कराकर बोले, “बेटा दुर्योधन ! तुमने मुझपर और आचार्य द्रोण पर विश्वासघाती होने का दोषारोपण किया था । हमने इस महायुद्ध का इतने दिन तक संचालन किया और अधर्म-युद्ध होतेहुए भी इतने दिन धर्म का सामना किया । अब देखते हैं तुम्हारा मित्र कर्ण पांडवों के समक्ष कितने दिन ठहरपाता है ।” इतना कहकर दादा भीष्म ने अपने नेत्र बन्दकर लिए ।

दुर्योधन अपने शिविर को लौटा तो कर्ण शिविर के समक्ष खड़ा था । कर्ण को देखकर दुर्योधन ने गम्भीर वाणी में कहा, “कर्ण ! मुझे अभी-अभी दादा भीष्म ने चुनौती दी है । उन्होंने मेरे उनके प्रति लगाए-गए आक्षेपों का उत्तर माँगा है और वह उत्तर देना तुम्हारी धीरता पर निर्भरकरता है । दादा भीष्म को अपनी पराजय पर भी गर्व है । वह कहते हैं कि वह और आचार्य द्रोण पराजित होतेहुए भी इतने दिन तक पांडवों के समक्ष डटेरहे । अब देखना है कि कर्ण कितने दिन पांडवों से लोहालेता है ।”

अभिमानी कर्ण यह सुनकर गरजताहुआ बोला, “महाराज दुर्योधन ! आपकी आज तक की पराजय के कारण केवल मात्र दादा भीष्म और आचार्य द्रोण ही थे । यदि मैं प्रथम दिन से सेनापति होता तो आपको यह दिन देखना ही न पड़ता । कौरव-पक्ष की आज तक जो क्षति हुई है वह सब आचार्य द्रोण और दादा भीष्म ने जान-बूझकर कराई है ।”

दुर्योधन को कर्ण के मुख से यही सुनने की आशा थी । सूर्य देवता अब उदय हुआ ही चाहते थे और रण-भेरी बजउठने का समय होगया था । दुर्योधन ने कर्ण के गले में प्रधान-सेनापति का हार पहिनाया और कर्ण रण-भूमि की ओर बढ़गया ।

कर्ण ने आज आधी रात से ही उठकर अपनी सेना को अभेद्य-व्यूह

के रूप में गठित किया था । पांडव-पक्ष के व्यूह की रचना आज अर्जुन ने की थी ।

आज का युद्ध कुछ विचित्र प्रकार से चला । सामूहिक आक्रमणों के स्थान पर व्यक्तिगत युद्ध ही मुख्य रूप से लड़े गए । अर्जुन संसप्तकों से युद्ध कर रहे थे । भीम अश्वस्थामा से भिड़ रहा था । धृष्टद्युम्न, सात्यकि और शिखंडी इधर-उधर शत्रुओं का संहार कर रहे थे । अन्य राजे भी इसी प्रकार युद्ध-रत थे ।

कर्ण ने युद्ध में प्रवेश करते ही सर्व-प्रथम पांचाल देश के वीरों को समाप्त करने का बीड़ा उठाया । अर्जुन से उसकी मुठभेड़ नहीं हुई ।

अश्वस्थामा अस्त्र-शस्त्र संचालन में बहुत निपुण था, परन्तु आज भीम के समक्ष उनका सब उत्साह और रण-कौशल फीका पड़ता जा रहा था । भीम ने अश्वस्थामा को मूर्छित कर दिया ।

अर्जुन के समक्ष संसप्तक त्राहि-त्रहि कर उठे । तब तक अश्वस्थामा सचेत होकर संसप्तकों की रक्षा के लिए वहाँ पहुँच गया । अश्वस्थामा ने अर्जुन को ललकारा तो अर्जुन संसप्तकों को छोड़कर अश्वस्थामा पर बरस पड़े । अर्जुन की मार के समक्ष अश्वस्थामा अधिक देर न ठहर सका । वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा ।

अर्जुन ने अपना मुख फिर संसप्तकों की ओर किया तो बीच में महारथी दण्डधर आ गए । दण्डधर ने अपने हाथी को आगे बढ़ाकर कृष्ण पर तोमर का वार किया । अर्जुन ने तोमर को बीच में ही काटकर एक तीर से दण्डधर का शीश धड़ से प्रथक कर दिया । दण्डधर को गिरते देख उसका भाई अर्जुन से आभिड़ा । अर्जुन ने उसे भी धराशायी कर दिया ।

अब अर्जुन निर्भीक होकर संसप्तकों में घुस गए । उनके हृदय में उनके प्रति क्रोधाग्नि भड़क रही थी, क्योंकि उन्होंने ही अर्जुन को अभिमन्यु की रक्षा से वंचित किया था ।

अर्जुन के वाणों ने संसप्तकों को भूमि पर बिछा दिया। अर्जुन के वाणों ने एक-एक संसप्तक को खोज-खोज कर काल का ग्रास बनाया।

संसप्तकों का विध्वंस देख नारायणी सेना अर्जुन के समक्ष आडटी। सत्यसेन ने क्रोधित होकर अपने तोमर से कृष्ण पर प्रहार किया, जिससे कृष्ण का बाँया हाथ घायल होगया। कृष्ण के हाथ का घोड़ा हाँकने का कोड़ा भूमि पर गिरपड़ा। यह देख अर्जुन की क्रोधाग्नि अत्यन्त प्रबल होउठी। उन्होंने एक ही वाण से सत्यसेन को समाप्त किया। अर्जुन ने चित्रवर्मा और चित्रसेन को भी यमलोक पहुँचाया।

अर्जुन-शिष्य सात्यकि ने भी कौरव-पक्ष में हा-हाकार का वातावरण उपस्थित कर दिया था। उसने कैकेयराज को यमलोक पहुँचाकर उनकी सेना को रणभूमि से भगा दिया।

कर्ण पांचालों को नष्ट करने पर अपनी समस्त शक्ति लगा रहा था। यह देखकर नकुल सामने आडटे, परन्तु कर्ण के वाणों ने उन्हें घायल कर दिया।

इसी प्रकार महायुद्ध होते-होते भुवनभास्कर अस्ताचल को चले गए। शांति-विगुल बजा और दोनों पक्षों के, सेनिक अपने-अपने शिविरों को लौट गए।

आज के युद्ध से दुर्योधन को संतोष रहा, परन्तु जो इच्छा वह लिए बैठा था, वह पूर्ण न हो सकी। रात्रि को कर्ण और दुर्योधन की मंत्रणा हुई, जिसमें कर्ण ने प्रण किया, “महाराज, कल या तो अर्जुन का नाश मेरे हाथ से होगा, अन्यथा मैं स्वयं वीर-गति को प्राप्त हूँगा। यह सत्य है कि अर्जुन के पास घातक अस्त्र हैं, अद्भुत रथ है, अक्षय तूणीर है और युद्ध-कौशल भी उसमें कम नहीं है। उसके पास अद्भुत गांडीव है और सबसे प्रबल शक्ति जो उसके पास है वह कृष्ण की नीति है, परन्तु इतना सब-कुछ होनेपर भी यदि मुझे योज सारथी मिल जाए तो मैं अर्जुन पर विजय प्राप्त कर सकता हूँ। महाराज शल्य को यदि आप इस कार्य के लिए उद्यत कर सकें तो कल बाजी आपके हाथ रहेगी।”

कर्ण के सुझाव से सहमत होकर दुर्योधन स्वयं महाराज शल्य के पास गए और चाटुकारिता करके उन्हें कर्ण के सारथ्य के लिए उद्यत करलिया ।

दुर्योधन ने शल्य को धोखे से अपने पक्ष में करलिया था । पांडवों के सगे मामा होनेपर भी वह दुर्योधन के धोके में आकर उसे वचन दे बैठे थे और उसकी ओर से युद्ध कर रहे थे ।

महाराज शल्य की सारथ्य के लिए स्वीकृति प्राप्त कर दुर्योधन ने यह समाचार कर्ण को दिया तो कर्ण हर्ष से फूल उठा । महाराज शल्य ने दुर्योधन से स्पष्ट कह दिया था कि वह सारथ्य केवल इसी शर्त पर स्वीकार कर सकते हैं कि उन्हें रथ-संचालन की पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी । वह जैसी परिस्थिति देखेंगे उसी के अनुसार रथ-संचालन करेंगे । उनके रथ-संचालन में दुर्योधन या कर्ण का कोई हस्ताक्षेप नहीं होगा ।

यह सब निश्चय होजाने पर कर्ण का रथ सजाया गया और शल्य ने सारथ्य ग्रहण किया । कर्ण सज-धजकर गर्व के साथ रथ पर जा बैठा । मारू बाजे के स्वर से आकाश निनादित हो उठा । कर्ण ने हर्ष के साथ अपना शंख फूँका ।

शल्य को सूत-पुत्र के सारथ्य का कार्य सौंपा गया था, इससे उनका हृदय ग्लानि से भर उठा था । उन्हें युधिष्ठिर को दिया गया अपना वचन याद था ।

कर्ण शीघ्र युद्ध-भूमि में पहुँचना चाहता था और शल्य रथ को धीरे-धीरे हाँकर रहे थे । यह देखकर कर्ण बोला, “महाराज ! तनिक शीघ्रतापूर्वक रथ को युद्ध-भूमि में ले चलिए ।”

शल्य बोले, “कर्ण ! मैं रथ-संचालन में कोई कमी नहीं आने दूँगा, परन्तु सोच रहा हूँ अर्जुन के समक्ष तुम कैसे युद्ध कर सकोगे । जिसके बाणों को दादा भीष्म, जैसे बालब्रह्मचारी सहन न कर सके, उन्हें तुम कैसे सहन करोगे ? तुम व्यर्थ अपने प्राण गँवाने की बात सोच बैठे हो । अर्जुन के साथ युद्ध में क्या तुम विजयी होने की आशा रखते हो ?”

शल्य के वचन सुनकर कर्ण के नेत्र अंगारों के समान दहक उठे, परन्तु वह अपने क्रोध को अन्दर-ही-अन्दर पीगया। वह अपने सारथी शल्य को किसी भी प्रकार अप्रसन्न नहीं कर सकता था।

कर्ण युद्ध-क्षेत्र में पहुँचकर घन-गर्जन के समान ललकारा, “पांडवो ! कहाँ है वह अर्जुन जो कल दिनभर मुझसे मुँह छिपाए इधर-उधर फिरतारहा। वह अपने को योद्धा समझता है तो मेरे सम्मुख आए और अपनी वीरता का परिचय दे।”

कर्ण की सक्रोध वाणी सुनकर महाराज शल्य बोले, “बेटा कर्ण ! क्यों व्यर्थ अपने काल का अह्वान कर रहे हो ? मैं नहीं समझता कि तुम्हें हो क्या गया है जो अपने शीर्ष को रण-चंडी पर अर्पण करने के लिए इस प्रकार उतारू हो उठे हो। अर्जुन को ललकारकर क्यों आत्म-घाती बनते हो ?”

शल्य की यह बात सुनकर कर्ण के क्रोध की सीमा न रही। वह बोला, “महाराज शल्य ! दुर्योधन के आदेश से मैं चुपचाप आपकी बातें सहन कर रहा हूँ। यदि उनका आदेश न होता तो एक क्षण में आपको यमलोक की यात्रा पर भेज देता।”

शल्य ने कर्ण को हतोत्साहित कर दिया। जब-जब वह उत्साह में भरकर धनुष उठाता, तब-तब शल्य ऐसी बातें कहते कि कर्ण का तन-बदन जल उठता।

तभी कर्ण ने देखा कि महाबली भीम उसके समक्ष आडटा और कर्ण को युद्ध के लिए ललकारा। कर्ण ने क्रोधित होकर एक वाण भीम की छाती में मारा और रक्त की धारा बहचली। तीर के लगते ही भीम ने रौद्र रूप धारण कर लिया और वह क्रोधित होकर कौरव-दल पर झूटपड़ा। भीम ने एक विरैले वाण का कर्ण पर प्रहार किया, जिससे कर्ण मृतवत होकर रथ पर गिरपड़ा। शल्य चतुराई से रथ को हटाकर एक ओर ले गए।

कर्ण ने दुबारा सचेत होकर धर्मराज युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। इस युद्ध में कर्ण ने युधिष्ठिर और उनके साथियों को लोहलुहान कर दिया।

युधिष्ठिर की यह दशा देख शल्य बोले, “कर्ण ! होश में आ। तू अपनी शक्ति इन लोगों पर नष्ट करदेगा तो फिर थके घोड़ों को लेकर अर्जुन से क्या युद्ध करसकेगा ? क्या तू अपनी आज की प्रतिज्ञा को भूल गया है ?” यह कहकर शल्य ने कर्ण का ध्यान युधिष्ठिर और उनके साथियों की ओर से हटा दिया।

तभी कर्ण की दृष्टि भीम पर पड़ी जो दुर्योधन को धूलिधूसरित करने की चेष्टा में लगा था।

कर्ण ने दुर्योधन की रक्षा के लिए अपना रथ उसी ओर बढ़वा दिया। नकुल और सहदेव घायल युधिष्ठिर को अपने शिविर में उठाकर ले गए।

अर्जुन संसप्तकों को समाप्तकर वहाँ पहुँचे जहाँ युधिष्ठिर और कर्ण का घमासान युद्ध सुना था। युधिष्ठिर को वहाँ न पाकर अर्जुन अघोर होउठे। उन्हें पता चला कि आहत धर्मराज को नकुल-सहदेव शिविर में उठाकर ले गए थे।

कृष्ण तथा अर्जुन ने वहाँ जाकर धर्मराज का अभिवादन किया। धर्मराज ने समझा कि अर्जुन कर्ण पर विजय प्राप्त करके आया था, परन्तु जब उन्हें पता चला कि कर्ण अभी जीवित है तो वह सक्रोध बोले, “अर्जुन ! धिक्कार है तुम्हारे गांडीव और तुम्हारी प्रतिज्ञा को। जिन दिव्यास्त्रों को अपने पास रखकर तुम शत्रु का नाश नहीं करसकते उन्हें अपने पास रखकर कलंकित न करो। उन्हें किसी अन्य व्यक्ति को दे दो।”

युधिष्ठिर की भर्त्सना सुनकर अर्जुन मर्महित होउठे। उन्होंने क्रोधित होकर अपनी कृपाण निकालली और बिजली के समान युधिष्ठिर पर झपटपड़े परन्तु कृष्ण अर्जुन को डपटकर बोले, “अर्जुन ! क्या तुम्हारा मस्तिष्क खराब होगया है ? कृपाण म्यान में रखो।”

अर्जुन धर्मराज की ओर देखकर बोले, “कृष्ण ! मैं मृत्यु को भी हँसकर अपनी छाती से लिपटासकता हूँ, परन्तु अपमान नहीं सहसकता ।”

कृष्ण बोले, “क्या वच्चों जैसी बातें करते हो अर्जुन ! धर्मराज को कर्ण ने आहत किया है । इसीसे इनका हृदय कर्ण के प्रति क्रोध से जलरहा है । यह उसका विनाश देखना चाहते हैं । यह क्रोधाग्नि में भूलगए हैं कि इन्हें तुमसे कैसी बातें करनी चाहिए । परन्तु मैं देख-रहा हूँ कि तुम सचेत होकर भी अचेत होउठेहो ।”

अर्जुन अपने क्रोध को शान्त करके कृपाण म्यान में रखकर बोले, “धर्मराज ! आप आहत होकर यहाँ शय्या पर पड़े हैं । आपको क्या पता कि युद्ध में हम पर क्या गुजररही है । मैं यहाँ आपकी दशा देखने आया था, भर्त्सना सुनने नहीं । भीम अकेला कर्ण से जूझरहा है । मैं संसप्तकों का विनाश करके लौटा हूँ । मार्ग में अश्वस्थामा से युद्ध करना पड़ा । उसे मूर्छित किया ।

आप यों धर्मराज हैं और सभी आपको धर्मराज कहते हैं, परन्तु क्या धर्मराज होने का यही लक्षण था कि आप जुआ खेलते ? आप जुआ खेलकर हमारा सब राजपाट न खोदेते तो क्यों आज कर्ण से जूझना पड़ता ? क्यों हम वन-वन मारे-मारे फिरते ? क्यों पांचाली का अपमान होता ? क्यों अभिमन्यु माराजाता ? यह सब सहन करके भी हमने कभी आपके सम्मुख जबान नहीं खोली । परन्तु आज जब आप हमारी भी भर्त्सना पर उतारू होगए तो जबान खुल गई । मैं भविष्य में कभी इस प्रकार के अपमान-सूचक शब्द सहन नहीं करूँगा ।”

यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर उठकर बैठेहोगए । उन्हें अपने शब्दों पर हार्दिक खेद हुआ । वह अपनी भूलें स्वीकार करके बोले, “वीर अर्जुन ! यह सत्य है कि सब अनर्थों की जड़ मैं ही हूँ । मैं तुमसे विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि तुम कृपाण निकालो और मुझ पापी का प्राणान्त करदो ।”

धर्मराज की यह विनम्रवाणी सुनकर अर्जुन पानी-पानी होगए । उन्होंने आगे बढ़कर अपने बड़े भाई के चरण छूकर प्रार्थना की, “धर्म-राज ! अनुज का अपराध क्षमा कर आशीर्वाद दें कि वह कर्ण का निधन करके संध्या को सकुशल शिविर में लौटे ।”

युधिष्ठिर गद्गद होउठे और उन्होंने अर्जुन को छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया । अर्जुन विद्युत-गति से श्रीकृष्ण के साथ समर-भूमि की ओर चलदिए ।

भीम को युद्ध में घायल कर कर्ण दूसरी ओर पांडव-सेना का संहार करने में लगा था । कर्ण के हटने पर दुश्शासन भीम पर लपका तो आहत होते हुए भी भीम उसपर टूटपड़े । भीम ने दुश्शासन के सारथी को मारडाला । भीम ने दुश्शासन पर गदा का इतना तीव्र प्रहार किया कि वह रथ से बहुत दूर जाकर गिरा और रथ चूर-चूर होगया । भीम लपककर दुश्शासन की छाती पर जाचढ़े और क्रुद्ध वाणी में बोले, “नीच दुश्शासन ! तेरा काल इस समय तेरी छाती पर बैठा है । तूने जिन हाथों को पांचाली का चीर-हरण करने के लिए बढ़ाया था ला पहिले उन्हें तोड़डालूँ ।” इतना कहकर भीम ने दुश्शासन के दोनों हाथ तोड़कर उसके शरीर से प्रथक् करदिए । फिर भीम ने दुश्शासन की छाती चीरडाली ।

भीम ने तभी देखा कि अर्जुन का रथ उसके समक्ष खड़ा था । भीम दुश्शासन की छाती का रक्तपान करताहुआ बोला, “कृष्ण ! आज मेरे हृदय की दहकतीहुई वह ज्वाला शांतहुई जो उस दिन भड़की थी जब इस पापी ने पांचाली का चीर-हरण करने के लिए हाथ बढ़ाया था ।”

कृष्ण ने गम्भीर वाणी में कहा, “शाबाश ! वीर भीम ! शाबाश ! तुम्हारे प्रण की पूर्ति देखकर मेरा हृदय हर्ष से भरउठा है ।” इतना कहकर उन्होंने अर्जुन का रथ कर्ण की ओर बढ़ादिया ।

युद्ध की यह भयानक स्थिति देख अश्वस्थामा दुर्योधन से बोला, “दुर्योधन ! इस महायुद्ध में अगणित सेनिक खेत रहे । हस्तिनापुर में तुम्हें अनेकों विधवाएँ विलाप करती मिलेंगी । उन विधवाओं पर राज्य करके तुम्हें क्या मिलेगा ? इस महाकाल के मुख में जब सबकुछ ही चलाजाएगा तो राज्य क्या वन्य-पशुओं पर करोगे ? यहाँ जब कोई राज्य भोगने को न रहेगा तो क्या स्वर्ग से तुम्हारे भाई राज्य करने आएँगे ? मेरा कहा मानो तो अब इस युद्ध को समाप्त कर दो । मैं युधिष्ठिर के पास जाता हूँ । वह अवश्य मेरा आग्रह स्वीकार करलेंगे ।”

अश्वस्थामा की नीतिकुशल बातें दुर्योधन को विपरीत वाणों के समान लगीं । वह बोले, “अश्वस्थामा ! मैं मानता हूँ कि आपकी बातें कौरव और पांडव, दोनों कुलों के हित की हैं, परन्तु अब स्थिति वह बन गई है कि न तो पांडव ही अभिमन्यु और घटोत्कच के निधन को भूलसकते हैं और न मैं ही दादा भीष्म, आचार्य द्रोण, पुत्र लक्ष्मण और भाई दुःशासन की मृत्यु को भुलासकता हूँ । इसलिए इस समय की संधि से मैं मरकर वीर-गति प्राप्त करने को ही अधिक उपयुक्त समझता हूँ ।

इस समय मैं कर्ण और अर्जुन का युद्ध देखना चाहता हूँ । कर्ण अर्जुन से युद्ध करने को लालायित है । आज कर्ण के मन की निकल जाने दो ।”

कर्ण और अर्जुन का घनघोर युद्ध ठनचुका था । कभी कोई किसी की प्रत्यंचा को काटडालता था और कभी कोई । दोनों एक दूसरे को घायल कर रहे थे । दोनों के बदन रक्त से भीग उठे थे ।

आज कृष्ण भी कर्ण की मार से सुरक्षित न रह सके । कृष्ण को घायल देख अर्जुन का रक्त उबाल खा उठा । उन्होंने कर्ण पर इतनी तीव्र वाण-वृष्टि की कि कर्ण हक्का-बक्का रह गया ।

धनुर्विद्या में परास्त होकर कर्ण ने नागास्त्र का अर्जुन को लक्ष्य बनाया । यह देखकर शल्य बोले, “मूर्ख कर्ण ! इस अस्त्र से अर्जुन का

क्या बिगड़ेगा ?” परन्तु कर्ण ने शल्य की बातों पर ध्यान न देकर नागास्त्र का प्रहार कर दिया ।

नागास्त्र को आते देश श्रीकृष्ण ने रथ के धोड़ों को घुटनों के बल बिठा दिया । इससे रथ कुछ टेढ़ा तो होगया, परन्तु अस्त्र अर्जुन के किरीट को थोड़ा सा काटताहुआ आगे निकल गया ।

नागास्त्र से बचकर अर्जुन ने एक ऐसा तीर छोड़ा जिससे घायल होकर कर्ण विक्षिप्त होगया । यह देखकर अर्जुन बाण-वर्षा बन्द करने को थे कि कृष्ण सक्रोध ललकारकर बोले, “अर्जुन ! यही समय है । तुम्हारा इस समय का धर्म तुम्हारी कायरता कहलाएगा ।”

अर्जुन ने फिर गांडीव संधानकर कर्ण पर अनवरत बाण वृष्टि कर मी प्रारम्भ कर दी ।

कर्ण भी तनिक सचेत होकर फिर अर्जुन पर बाण-वृष्टि करने लगा, परन्तु कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में फँस गया था ।

कर्ण अपने रथ का पहिया कीचड़ से निकालताहुआ अर्जुन से बोला, “अर्जुन ! धर्म कहता है कि इस अवसर पर तुम्हें बाण चलाना बन्द कर देना चाहिए ।”

यह सुनकर कृष्ण ललकारकर बोले, “जब सिर पर मृत्यु मँडराती है तो अधर्मी भी धर्म की दुहाई देते हैं कर्ण ! तुम्हारा धर्म उस समय कहाँ चला गया था जब कौरव सभा में पांचाली को चीर उतारने के लिए लाया गया था ? तुम्हारा धर्म तब कहाँ था जब तुम सात महारथियों ने मिलकर निशस्त्र बालक अभिमन्यु की निर्मम हत्या की थी ? आज तुम भी धर्म की दुहाई देने चले हो ।”

अभिमन्यु का नाम कृष्ण की जवान पर आते ही अर्जुन पागल हो उठे और कर्ण को तीखे बाणों से बंधना प्रारम्भ कर दिया ।

उसने अवसर देखकर एक विष-बाण कर्ण के सिर का लक्ष्य करके छोड़ा, जिसने कर्ण के सिर को धड़ से पृथक् कर दिया ।

कर्ण का मरना था कि पांडवों ने विजय-दुन्दभी बजादी । पांडव-पक्ष का वातावरण आनन्द से भरउठा ।

कौरव-पक्ष में उदासी छागई । दुर्योधन व्याकुल होकर रोपड़े । कौरव-पक्ष के वीरों ने उसे लाख समझाने का प्रयास किया, परन्तु वे उसे धैर्य न बाँधासके । वह रोते और बिलखते हुए अपने शिविर को चलदिए । दुर्योधन के नेत्रों के समक्ष इस समय घोर निराशा का वातावरण था । उन्होंने जो स्वप्न देखा था, उसकी छाया भी अब उनके नेत्रों के सामने से हटचुकी थी । वह किंकर्तव्यविमूढ़ से जाकर अपने शिविर में अचेत होकर गिरपड़े ।

धृतराष्ट्र को कर्ण के निधन का समाचार मिला तो वह बैठे-बैठे ही काँपउठे । दुःशासन की मृत्यु ने उनके हृदय को और भी विदीर्ण करदिया । उन्हें अब कौरवों की पराजय के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे । उनके पुत्र दुर्योधन की रक्षा करनेवाला अब कोई नहीं बचा था ।

११

दादा भीष्म को कर्ण की मृत्यु का समाचार मिला तो उन्होंने दुर्योधन को बुलाया और गम्भीर वाणी में बोले, “बेटा दुर्योधन ! तुम्हारा परम मित्र कर्ण भी अब मृत्यु का ग्रास होगया । मैंने और द्रोण ने तुम्हारे विपक्षी पांडवों के शुभचिंतक होने पर भी इतने दिन तक युद्ध-संचालन किया, परन्तु तुम्हारा परम हितैषी मित्र तो दो दिन भी पूरे न निकालसका ।

इससे तुम्हारे मन का वह भ्रम दूर होजाना चाहिए कि हमने तुम्हारे साथ विश्वासघात किया था ।

मैं अब अंतिम बार तुमसे कहता हूँ कि तुम पांडवों से संधि कर कुरु-वंश को विनाश से बचाओ । विनाश में अब देर नहीं है ।”

इतना कहकर दादा भीष्म ने नेत्र बन्द करलिये और दुर्योधन बिना कोई उत्तर दिए अपने शिविर की ओर चलदिया। वह शिविर में पहुँचा तो कृपाचार्य वहाँ आगए। कृपाचार्य का हृदय ग्लानि से भरा हुआ था। वह बोले, “दुर्योधन ! जो होना था, सो होचुका। दोनों पक्षों का शक्ति-परीक्षण होगया। तुम्हारे लगभग सभी महारथी युद्ध में खेतरहे। फिर अब किस लिए व्यर्थ जिद कररहे हो ? अब और क्या देखना शेष है ?

मेरा कहा मानो तो युद्ध बन्द करदो। पांडवों के पास संधि-पत्र भेजदो। भाइयों से संधि करने में अपमान का प्रश्न नहीं उठता। पांडव तुम्हारे संधि-पत्र को ठुकराएँगे नहीं, मुझे पूर्ण विश्वास है। कृष्ण भी इसे अस्वीकार नहीं करेंगे। यदि तुम चाहो तो मैं स्वयं यह संधि-पत्र लेकर पांडवों के शिविर में जाने को उद्यत हूँ।”

दुर्योधन बोला, “आचार्य ! आप जो कुछ कहरहे हैं, वह हमारे हित की बात है। मुझे अब संदेह नहीं रहा कि विजय पांडवों की ही होगी। आप अभिमन्यु की मृत्यु के शोक से पीड़ित अर्जुन के हृदय की दशा को जानते हैं और भीम का प्रण भी आपसे छिपा नहीं है। पांचाली ने प्रतिज्ञा कीहुई है कि जबतक उसके अपमान का बदला न लियाजाएगा तब तक वह भूमि-शयन करेगी। पांडवों की सब प्रतिज्ञाएँ पूर्ण होचुकी हैं। अब केवल भीम की प्रतिज्ञा शेष है और वह भी अवश्य पूर्ण होगी।

आप मेरे हित की बात सोचरहे हैं, परन्तु मैं अब वह रोगी हूँ जो कडुवी औषधि पीने की अपेक्षा प्राण देना अधिक सुखकर समझता है। अब न तो पांडव ही संधि-प्रस्ताव स्वीकार करेंगे और न मैं भेजूँगा ही। अपने परिवार को अपनी आँखों के समक्ष नष्ट कराकर मैं अकेला किस लिए जीवित रहूँगा ? इस समय संधि-प्रस्ताव भेजने को मैं कायरता समझता हूँ। संधि राजनीति का एक अंग अवश्य है, परन्तु अब वह

संधि किस लिए ? आचार्य मुझे क्षमा करें । अब विजय या मृत्यु के अतिरिक्त मेरा अन्य कोई मार्ग नहीं होसकता ।”

तभी अश्वस्थामा आपहुँचा । दुर्योधन ने पूछा, “भाई अश्वस्थामा ! अब किसे सेनापति बनायाजाए ?”

अश्वस्थामा बोले, “आयु, विद्या, बुद्धि और पराक्रम की दृष्टि से अब महाराज शल्य को सेनापति बनाना चाहिए ।”

दुर्योधन को यह प्रस्ताव मान्य हुआ । उसकी स्वीकृति के लिए वह महाराज शल्य के शिविर में पहुँचे । उन्हें सादर प्रणाम करके दुर्योधन ने अपना प्रस्ताव उनके समक्ष प्रस्तुत किया । वह बोले, “मामा ! यद्यपि रिश्ते में आप नकुल और सहदेव के सगे मामा हैं, उनसे कुछ प्रथक युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन के और फिर मेरा स्थान आता है; परन्तु आपने वचन-वद्ध होकर मेरा साथ दिया है और जो वीरता दिखाई है उसके लिए मैं आपका हृदय से आभार मानता हूँ । आप जैसे प्रतिज्ञा-पालक महारथी को प्राप्तकर मैं अपने को धन्य मानता हूँ । मैं आपसे सानुरोध प्रार्थना करता हूँ कि अब आप हमारी सेना का प्रधान सेनापति-पद ग्रहण करें ।”

महाराज शल्य बोले, “दुर्योधन ! मुझे तुम्हारा आग्रह मानने में संकोच नहीं । मैं युद्ध-भूमि में पांडव क्या सुरराज भी आए तो उसका भी मुँह मोड़सकता हूँ ।”

सेनापतित्व का गौरव शल्य की नस-नस में भरउठा । उनके नेत्र बन्द होगए और धर्म-अधर्म का विचार उनके मस्तिष्क से जाता रहा ।

दुर्योधन ने उन्हें सहर्ष प्रणाम किया और अपने शिविर में आकर दूसरे दिन के युद्ध की तय्यारी पर जुटगए ।

महाराज शल्य ने व्यूह-रचना की । स्वयं व्यूह के द्वार-रक्षक का भार सँभाला । अन्य कौरव-वीरों को यथास्थान नियुक्तकर पांडव-सेना पर आक्रमण करने का निश्चय किया ।

शल्य की व्यूह-रचना देखकर पांडवों ने भी अपनी सेना में पूर्ण तय्यारी करली । धृष्टद्युम्न, सात्यकि और शिखंडी ने कौरवों के मुख्य-द्वार पर जाकर महाराज शल्य से युद्ध किया । कृपाचार्य की सेना को भीम ने ललकारा ।

धर्मराज युधिष्ठिर ने आज शल्य का रौद्र रूप देखा तो वह भी सात्यकि और धृष्टद्युम्न की सहायता के लिए व्यूह के मुख-द्वार पर पहुँच गए । युधिष्ठिर की तीखी वाण-वृष्टि के सम्मुख कौरवों का ठहरना असम्भव होगया । शल्य ने आज पराक्रम दिखाने में कोई कसर नहीं आनेदी और ऐसी वाण-वर्षा की कि युधिष्ठिर का रथ वाणों की छाया में लुप्त होगया । तभी युधिष्ठिर का एक वाण शल्य की छाती में लगा और वह मूर्च्छित होकर रथ पर गिरपड़े ।

इस आघात से शल्य बहुत क्रोधित हुए । वह द्विगुण रोष के साथ युधिष्ठिर से लड़नेलगे, परन्तु युधिष्ठिर के वाणों ने उनके बदन को छलनी करदिया था । शल्य के धनुष को युधिष्ठिर ने काटकर फेंक दिया ।

यह स्थिति देख शल्य तलवार लेकर रथ से कूदपड़े । भीम ने दूर से ही शल्य को तलवार लेकर धर्मराज युधिष्ठिर की ओर लपकते देखा तो एक वाण मारा जिससे शल्य की तलवार टूट-टूक होकर भूमि पर गिरपड़ी । तब शल्य खाली हाथ ही युधिष्ठिर की ओर झपटे ।

युधिष्ठिर ने शल्य को अपनी ओर आते देखकर एक ऐसा वाण मारा कि उनकी लोक-लीला समाप्त होगई । शल्य के मरते ही पांडवों ने विजय-दुन्दभी बजादी और कौरव-सेना भागखड़ीहुई । दुर्योधन ने लाख प्रयास किया, परन्तु सेना आगे बढ़ने को उद्यत न हुई । अर्जुन के वाणों के समक्ष कौन जाकर अपने प्राण देता ।

यह स्थिति देख दुर्योधन भी अपने शिविर की ओर भागा । दुर्योधन को भागते देख अर्जुन ने उसे ललकारा । अर्जुन की ललकार सुनकर

दुर्योधन ने अपना रथ रोका और अर्जुन के वाणों का उत्तर दिया । कौरव-सेना के उखड़तेहुए पैर फिर जम गए । पांडव भी अर्जुन की सहायता के लिए वहाँ जा पहुँचे । दुर्योधन ने घनघोर युद्ध किया, परन्तु कहाँ अर्जुन और कहाँ दुर्योधन ।

कृष्ण अर्जुन से बोले, “अर्जुन ! आज इस नीच दुर्योधन की भी प्राण-लीला समाप्त हो जानी चाहिए । हमें आज ही इसे समाप्त कर विजयोत्सव मनाना है ।”

अर्जुन बोले, “कृष्ण ! आपकी सम्मति मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ, परन्तु दुर्योधन को महाबली भीम ने मारने की प्रतिज्ञा की है । यह उन्हींका शिकार है । मुट्ठी-भर कौरव अब हमारा क्या बिगाड़सकते हैं ?”

दुर्योधन ने पूर्व दिशा के तालाव में एक पोलदार स्तम्भ बनवाया हुआ था । वह अपनी गदा लेकर उसी तालाव की ओर भागखड़ा हुआ और जल में जा छिपा । मार्ग में उसे संजय मिला । उसे उसने अपनी सारी सेना के विध्वंस की कथा सुनाई । थकेहुए अश्वस्थामा, कृपाचर्म और कृतवर्मा भी उसी मार्ग से जा रहे थे । मार्ग में उनकी संजय से भेंट हुई तो उसने उन्हें दुर्योधन के विषय में बताया । उसने कहा, “महाराज दुर्योधन इस समय तालाव के जल-स्तम्भ में हैं । मैं महाराज धृतराष्ट्र के पास उनका प्रणाम लेकर जा रहा हूँ ।”

अश्वस्थामा दुर्योधन की ओर चल दिया । रात्रि के अंधकार में उसने दुर्योधन को पुकारा और दुर्योधन ने अश्वस्थामा की आवाज पहिचानकर उसे प्रत्युत्तर दिया ।

उसी समय कुछ लोग उधर से पांडवों की सेना का भोजन लेकर जा रहे थे । उन्हें मालूम होगया कि दुर्योधन तालाब के अन्दर बने खोखले स्तम्भ में छिपा था । यह सूचना उन्होंने जाकर पांडवों को दी ।

पांडव अपनी सेना सहित तालाब पर आ गए । पांडव-सेना को तालाब की ओर आतेदेख अश्वस्थामा बोला, “महाराज दुर्योधन !

आप स्तम्भ में छिपेरहिए । मैं वट-वृक्ष के नीचे चलाजाता हूँ । पांडव-सेना इधर आरही है । मैं आपसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आज रात्रि में पाँचों पांडवों का वध करदूँगा ।”

तालाब के निकट पहुँचकर कृष्ण की अनुमति से सर्वप्रथम युधिष्ठिर ने दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारा ।

दुर्योधन बोला, “मैं अकेला हूँ और घायल होकर आत्म-रक्षा के लिए यहाँ पड़ा हूँ । आप लोग इस समय जाकर विश्राम कीजिए । मैं कल समर-भूमि में आपसे लड़ूँगा ।”

युधिष्ठिर बोले, “हमने निश्चय करलिया है कि आज भोजन तुम्हें मारकर ही करेंगे । अपने बन्धु-बांधवों को मरवाकर यहाँ छिपते तुम्हें लज्जा नहीं आई । तालाब से बाहर निकल और वीर-गति प्राप्तहो ।”

दुर्योधन बोला, “मैं अकेला हूँ युधिष्ठिर ! और तुम ससैन्य हो । क्या यह युद्ध धर्म-विरुद्ध होगा ? अकेले-अकेले मैं तुम पाँचों भाइयों से लड़ने को उद्यत हूँ ।”

युधिष्ठिर बोले, “नीच ! धर्म का नाम मुख से उच्चारण करते तुम्हें लज्जा नहीं आती । तू बाहर निकल और एक से ही युद्धकर ।”

अब दुर्योधन छिपा नहीं रहसकता था । वह बाहर निकलआया और भीम से उसका युद्ध प्रारम्भ होगया ।

उसी समय कहीं से बलरामजी वहाँ आपहुँचे । सबने बलरामजी का अभिवादन किया । भीम और दुर्योधन ने अपना गदा-युद्ध प्रारम्भ किया । बलरामजी बोले, “मैं बयालीस दिन के तीर्थाटन पर था । आज अचानक ही यहाँ आपहुँचा । मेरी यह उत्कट इच्छा थी कि किसी दिन अपने दोनों शिष्यों का गदा-युद्ध देखूँ । यह स्थान भी गदा-युद्ध के लिए बहुत उपयुक्त है । यहीं महाभारत का अंतिम निर्णय होगा ।”

दुर्योधन और भीम का गदा-युद्ध प्रारम्भ होगया । दुर्योधन ने भीम

के कवच की कड़ी-कड़ी तोड़डाली । यह देखकर कृष्ण अर्जुन से बोले, “अर्जुन ! भीम युद्ध के जोश में अपनी प्रतिज्ञा को भूल गए हैं । इन्हें किसी संकेत से उसकी याद दिलाओ ।”

कृष्ण का संकेत पाते ही अर्जुन ने अपनी जंघा पर हाथ मारकर भीम को ललकारा तो भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई ।

दुर्योधन भीम पर गदा का प्रहार करके नौ-दस हाथ ऊपर कूद जाते थे और भीम प्रहार सहकर भी उसपर प्रहार न कर पाते थे । इस बार ज्यों ही प्रहार करके दुर्योधन ऊपर कूदे तो भीम ने उनका पैर पकड़कर उन्हें भूमि पर देमारा और एक ही बार में उनकी जंघाएँ को तोड़ डालीं । दुर्योधन की हड्डियाँ चकनाचूर होगईं ।

गदा-युद्ध में कमर से नीचे प्रहार करना वर्जित होता है । भीम का दुर्योधन की जंघा पर प्रहार देखकर बलरामजी क्रुद्ध हो उठे और वह भीम को मारने के लिए दौड़े ।

यह देखकर कृष्ण ने बलराम जी का हाथ पकड़ लिया और उन्हें भीम की प्रतिज्ञा का ज्ञान कराते हुए भरी सभा में पांचाली को अपनी जंघा पर बिठाने को कही गई कथा सुनाई तो उसे सुनकर उनका क्रोध शांत हुआ । फिर दुर्योधन के अन्याय और सात महारथियों द्वारा मिलकर अभिमन्यु को मारने की बात उन्होंने बलरामजी को सुनाई तो वह शांत होकर बोले, “ठीक है कृष्ण ! परन्तु मुझे यह नीतिविरुद्ध युद्ध अच्छा नहीं लगा । मैं अब यहाँ नहीं ठहर सकती ।” इतना कहकर बलरामजी वहाँ से चले गए ।

पांडव भी अपने शिविर को लौट गए ।

कौरव-पक्ष में अब केवल अश्वस्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य शेष रह गए थे । उन्हें दुर्योधन के हताहत होने का समाचार मिला तो वे तीनों मैदान में उसे खोजने लगे । उन्होंने देखा कि वह दुर्योधन, जिसकी भृकुटी के संकेत पर वसुधा काँपती थी, श्वान और गीदड़ों के भुण्डों के बीच पड़ा मृत्यु की अंतिम घड़ियाँ गिन रहा था ।

अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा दुर्योधन के निकट पहुँचे तो दुर्योधन ने नेत्र खोलदिए। वह बोला, “आचार्य-पुत्र अश्वस्थामा ! यह रोने का समय नहीं है। मैं न मरता तो मुझे खेद होता। मैं स्वर्ग में जाकर अपने बन्धु-बांधवों से भेट करूँगा।”

अश्वस्थामा बोला, “महाराज दुर्योधन ! कुछ भी क्यों न हो, मैं ब्रह्माण्ड की सौगंध खाकर कहता हूँ कि मैं आज रात्रि को पांडवों को उनके अन्याय का फल चखाएबिना न रहूँगा।”

अश्वस्थामा की बात सुनकर दुर्योधन तनिक सँभल गया, मानो बुझतेहुए दीपक में किसी ने कुछ बूँदें तेल की डाल दीं।

दुर्योधन ने कृपाचार्य से एक कलश पानी मँगाकर अश्वस्थामा को कौरव-सेना का अंतिम सेनापति घोषित किया।

अश्वस्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ पांडव-शिविर की ओर चलपड़ा।

दुर्योधन की जंघा चकनाचूर होगई थी। वह हिल-डुल नहीं सकता था। उसका कंठ सूख गया था और कोई उसे दो घूँट जल देनेवाला भी नहीं था। उसे उस समय अपनी मृत्यु का उतना दुःख नहीं था जितना पांडवों के जीवित रहने का था। अंतिम समय भी उसने अश्वस्थामा से यही प्रतिज्ञा ली कि वह पांडवों का वध करेगा।

अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा अपने मुँह छिपातेहुए पांडव-शिविर के निकट जा पहुँचे। वे एक तालाब के किनारे जाकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। परन्तु अश्वस्थामा के हृदय में अपने पिता द्रोण के घातकों को मृत्यु के घाट उतारने की महाप्रचण्ड ज्वाला सुलग रही थी।

कृपाचार्य बोले, “बेटा ! थकावट और पिता की मृत्यु के कारण तुम्हारा मन अस्वस्थ होगया है। धर्म का मार्ग छोड़कर अधर्म का मार्ग न अपनाओ। इसमें तुम्हें सफलता नहीं मिलेगी। हम लोभ कल

तीनों ही युद्ध-भूमि में पांडवों को तलवारेंगे और वीर-गति को प्राप्त होंगे ।”

अश्वस्थामा बोला, “धर्म का समय समाप्त हो चुका आचार्य ! पांडवों ने ही कौन धर्म-युद्ध किया है जो धर्म के नाम पर उन्हें छोड़ दिया जाए । सामने लड़कर उन पर विजय प्राप्त करना अशुभ है । आप लोग मेरा साथ देना चाहें तो दें, अन्यथा मैं अकेला ही जाता हूँ ।”

यह कहकर अश्वस्थामा पांडव-शिविर की ओर चल पड़ा । कृपा-चार्य और कृतवर्मा भी अन्य कोई उपाय न देखकर उसके पीछे-पीछे हो लिए ।

अश्वस्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा को शिविर-द्वार पर छोड़कर अन्दर गया । उसने प्रथम शिविर में धृष्टद्युम्न को अपनी रानी के पास सोते देखा । उसने उसे वहीं पर समाप्त कर दिया ।

उसके शिविर से बाहर निकलते ही धृष्टद्युम्न की रानी रोने और चिल्लाने लगी । इससे शिखंडी, पांचाली तथा उसके पाँचों पुत्र जाग उठे । उन्होंने देखा कि अश्वस्थामा शिविर में आघुसा था । शिखंडी अश्वस्थामा पर दूट पड़ा, परन्तु वह नींद से उठा था, इसलिए पूर्ण सचेत न था । अश्वस्थामा ने तलवार के एक ही वार से उसका सिर काटकर गिरा दिया । शिखंडी को मारकर अश्वस्थामा ने शिविर में आग लगाने की ।

अश्वस्थामा वहाँ से भागकर द्वार पर खड़े कृपाचार्य और कृतवर्मा के पास पहुँच गया और जो लोग प्राण बचाकर जलते हुए शिविर से बाहर आने लगे उन्हें एक-एक करके समाप्त करता गया ।

अश्वस्थामा ने रात्रि के अंधकार में पांचाली के पाँचों पुत्रों के सिर उतार लिए । वह उन्हें पाँचों पांडव समझ रहा था । वह उनके सिरों को उनकी चोटियों से पकड़कर रात्रि के अंधकार में खिलखिलाकर हँसता हुआ उधर को भाग लिया जिधर दुर्योधन पड़ा अपने जीवन के अंतिम श्वास

गिनरहा था। दुर्योधन के बदन का सब रक्त निकल चुका था और मुँह पीला पड़ गया था, परन्तु उस दशा में भी उसने अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा को अपनी ओर आते देखा तो उसके नेत्रों में प्रकाश उतर आया।

अश्वस्थामा ने अपनी वीरता का वर्णन किया तो दुर्योधन के चेहरे पर प्रसन्नता दौड़ गई। अश्वस्थामा ने जब यह कहा कि उसने पाँचों पांडवों को समाप्त कर दिया तो वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। परन्तु जब अश्वस्थामा ने पाँव कटे हुए सिर उसके सम्मुख रखे तो दुर्योधन के मुँह से 'आह' निकल गई। वह उन मुण्डों को देखकर रो पड़ा और अश्रु दुलकाता हुआ बोला, "अश्वस्थामा ! तूने यह क्या किया ? पांचाली के इन बालकों को मारकर तूने क्या लिया ? जा हट नीच ! मेरी आँखों के आगे से दूर हो जा।" इतना कहकर दुर्योधन के नेत्र बन्द हो गए और वह सर्वदा के लिए धरतीमाता की गोद में सो गया।

अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा रणक्षेत्र से भाग गए।

१२

पाँचों पांडव, कृष्ण और सात्यकि दुर्योधन को लगभग समाप्त कर निश्चिन्त हो गए थे। वे डेरों पर न जाकर सरितापार चले गए थे। रात्रि में जब उन्हें अपने शिविरों से ज्वाला की लपटें उठ-उठकर आकाश को चूमती दिखाई दीं तो वे नौका पर सवार होकर उधर दौड़ पड़े।

परन्तु वहाँ उनके पहुँचने से पूर्व ही सब कुछ समाप्त हो चुका था। वहाँ का दृश्य बहुत हृदय-विदारक था। चारों ओर कोलाहल था। रात्रि का अंधकार चारों ओर छाया हुआ था। हाथ-को-हाथ दिखाई नहीं पड़ रहा था।

उन्होंने शिविरों से उठनेवाली ज्वाला के प्रकाश में अश्वस्थामा को भागतेहुए देखा। उसे देखकर महाबली भीम का रक्त खोल उठा और वह उसके पीछे दौड़ पड़े। उसके साथ ही उनके अन्य चारों भाई भी उधर को ही लपक लिए।

अश्वस्थामा ने उन्हें अपनी ओर आते देख ब्रह्मास्त्र से प्रहार किया। उस अस्त्र को भीम की ओर आते देख अर्जुन ने उसे बीच में ही काट दिया।

अश्वस्थामा फिर भाग लिया और पाँचों पांडव उसके पीछे-पीछे थे। उसी समय सामने से वेदव्यास आते दिखाई दिए। उन्होंने हाथ उठाकर पांडवों को रोक दिया।

वेदव्यास बोले, “पांडव-पक्ष के महारथियो ! विध्वंस पराकाष्ठा को पहुँच चुका है। क्या क्षमा को आपलोग संसार से समाप्त कर देना चाहते हैं ? अश्वस्थामा ने जघन्य अपराध किया है, परन्तु वह तुम्हारा गुरु-पुत्र है। उसे क्षमा-दान दो। तुम लोगों ने भी द्रोण का धर्म से संहार नहीं किया था।”

वेदव्यास की बात सुनकर श्री कृष्ण मुस्कराकर बोले, “महामुनि व्यास, क्या अधर्म को अधर्म से मारना अधर्म है ? क्या आचार्य द्रोण का कौरव-पक्ष की ओर से युद्ध करना धर्म था ?”

वेदव्यास गम्भीर वाणी में बोले, “योगिराज ! आचार्य द्रोण और दादा भीष्म के कौरव-पक्ष की ओर से युद्ध करने को मैं उनकी भयंकर भूल ही नहीं, महान् अपराध मानता हूँ। वे बलरामजी की भाँति तटस्थ रहते तो यह मानव-संहार कभी न होता। दुर्योधन पांडवों से युद्ध करने का साहस उन्हीं के बल पर कर सका। यदि युद्ध होता भी तो तीन दिन से अधिक न ठहरता। मैं इस भयंकर नर-हत्या कांड का सबसे बड़ा दोषी दादा भीष्म को मानता हूँ। वह इन्द्रियोजित बाल-ब्रह्मचारी भीष्म जिनके तप और तेज ने आचार्य कच और माता

देवयानी के त्याग और तपस्या को कुरु-वंश में साकार कर दिया, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन विमाता के पुत्रों, पौत्रों और उनके बच्चों के निमित्त अर्पण कर दिया; वहीं अपने अन्तिम काल में इतने दुर्बल हो गए कि कुरु-वंश की राज-सभा में द्यूत-सभा का आयोजन देख सकें। उन्होंने अपने कुल की उसी मर्यादा को, जिसे उन्होंने अपने रक्त से सींचा था, द्यूत-सभा द्वारा कलंकित होते अपनी आँखों के समक्ष देखा।

उससे भी घृणित कार्य पांचाली का भरी सभा में अपमान होना था। दादा भीष्म और आचार्य द्रोण का उस कृत्य को मौन बैठे देखते रहना उनकी मृत्यु का द्योतक था। दादा भीष्म और आचार्य द्रोण की मृत्यु इस महायुद्ध में नहीं हुई, बल्कि उसी समय हो चुकी थी। उनकी आत्मा का हनन हो चुका था। भारद्वाज ऋषि की सन्तान द्रोण को उस दिन के पश्चात् कुरु-वंश का अन्न-जल ग्रहण नहीं करना चाहिए था। दादा भीष्म को उसी दिन धृतराष्ट्र को राज्यच्युत कर देना चाहिए था।

उस समय यदि माता देवयानी का रक्त कृष्ण के रूप में प्रस्तुत न होता तो कुरु-वंश की मर्यादा उसी दिन मिट्टी में मिल गई होती। मैंने यह बदलता युग अपनी आँखों के समक्ष देखा। इसका भविष्य भारत-भूमि के लिए कितना कष्टप्रद होगा, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर पा रहा हूँ।

अब तुम लोग सब हस्तिनापुर जाओ। महाराज धृतराष्ट्र और गांधारी के साथ कोई दुर्व्यवहार न हो, इसका ध्यान रखना।”

पांडवों ने व्यासजी के चरण छूकर उनका आदेश पालन करने की शपथ ली।

संजय ने महाराज धृतराष्ट्र को दुर्योधन के निधन की सूचना दी तो वह उसे सुनकर मूर्छित हो गए। उनके हृदय में भीम के प्रति द्वेषाग्नि भड़क उठी।

तभी महात्मा विदर वहाँ पहुँचे। उन्होंने धृतराष्ट्र को सांत्वना देने

का प्रयास किया, परन्तु उनके हृदय की अग्नि शांत न हो सकी। उन्होंने पांडवों से भेट करने की इच्छा प्रकट की। विदुर, धृतराष्ट्र और संजय रणस्थल की ओर चल पड़े।

दादा भीष्म शर-शय्या पर पड़े युद्ध की अन्तिम सूचना प्राप्त करना चाहते थे। कृष्ण पांडवों के साथ उनके निकट पहुँचे और उनके चरण छूकर अपनी विजय का समाचार दिया।

दादा भीष्म का चेहरा खिल उठा। उन्होंने कृष्ण की ओर देखकर कहा, “कृष्ण ! तुमने एक दिन युद्ध में मेरी भर्त्सना की थी। उस दिन से आज तक मैं शर-शय्या पर पड़ा-पड़ा उसी पर विचार करतारहा और अन्त में मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि वास्तव में इस समस्त महा-पाप का मैं ही एक मात्र दोषी हूँ। कायरता मनुष्य का सबसे बड़ा पाप है। मैं कायर बन गया था। मैंने अपने आपको राजा का दास समझ लिया और उससे मेरी आत्मा का हनन हो गया था। अधर्म के विरुद्ध खड़ा होने की मुझमें शक्ति नहीं रही थी। मैंने सम्पत्ति को धर्म से ऊपर स्थान दे डाला था और परिणाम स्वरूप मैंने दुर्योधन के अनाचारों को सहन किया।

मुझे ब्रूत-सभा का आयोजन नहीं होने देना चाहिए था।” कहते-कहते उनके नेत्र अंगारों के समान जल उठे। उनकी वाणी भयंकर क्रोध की ज्वाला उगने लगी। उनका समस्त बदन थर-थरा उठा। वह बोले, “मुझे धृतराष्ट्र को उसी समय राज्यच्युत कर देना चाहिए था। मुझे दुर्योधन को राज्य से बाहर निकाल देना चाहिए था।” कहते-कहते उनके नेत्रों में आँसू भर आए।

“परन्तु कृष्ण ! मैं यह सब कुछ भी न कर सका। मेरी आत्मा मर चुकी थी। मैं अब नहीं मरूँगा कृष्ण ! मैं उसी दिन मर चुका था।” कहते-कहते दादा भीष्म की वाणी रुक गई।

पांडव अपने शिविर में पहुँचे तो ज्ञातहुआ कि महाराज धृतराष्ट्र

वहाँ पधारेहुए थे । उनका आग्रह था कि पांडव जैसे ही वहाँ आएँ तो उनसे भेंट करें । उन्होंने विशेष रूप से भीम को अपने निकट बुलाने का आग्रह किया था ।

यह समाचार प्राप्त कर कृष्ण सतर्क होगए । वह संजय से बोले, “महाराज धृतराष्ट्र को सादर सम्मान के साथ शिविर में बिठाकर कहना कि पांडव अपने गुरु-जनों का दाह-कर्म-संस्कार करके उनका तर्पण करने गए हैं । आते ही आपकी सेवा में उपस्थित होंगे ।”

कृष्ण ने महाराज धृतराष्ट्र के पास पांडवों को नहीं जानेदिया । पांडव कृष्ण के उस रहस्यपूर्ण कार्य को समझने में असमर्थ रहे । कृष्ण उन्हें शिविर से दूर लेगए और अपनी शस्त्र-शाला के निपुण कारीगर को बुलाकर एक लोहे का पुतला बनालाने की आज्ञा दी ।

महाराज धृतराष्ट्र का हृदय व्याकुल होउठा था । वह अपने हाथों की बार-बार मुट्ठियाँ बाँध और खोलरहे थे । उनके दांत क्रोध के कारण बार-बार बजउठते थे । उनके हृदय में अपने पुत्र दुर्योधन की मृत्यु की अथाह पीड़ा थी । वह दुर्योधन के मारनेवाले को पृथ्वी-तल से उठा देनाचाहते थे ।

जब कारीगर लोहे का पुतला बनाकर लेआया तो कृष्ण पांडवों को अपने साथ लेकर महाराज धृतराष्ट्र के पास पहुँचे और उन्हें सादर प्रणाम किया । वह बोले, ‘महाराज, आपने व्यर्थ क्यों कष्ट किया ? पांडव तो स्वयं ही आपकी चरण-रज लेने के लिए आपकी सेवा से उपस्थित होनेवाले थे ।’

धृतराष्ट्र मुस्कराकर बोले, “मैंने सोचा कृष्ण ! मैं स्वयं ही यहाँ आकर अपने भतीजों को अपने साथ क्यों न लेचलूँ । कहाँ है बेटा भीम ?”

यह सुनकर कृष्ण ने भीम को पीछे खींचलिया और सर्वप्रथम युधिष्ठिर को उनके पास भेजा । युधिष्ठिर ने उन्हें प्रणाम किया तो उन्होंने

अनिच्छा से उनके सिर पर हाथ रखकर उन्हें एक ओर करदिया। महाराज धृतराष्ट्र की भुजाएँ भीम को खोजरही थीं। वह बोले, “भीम ने महाभारत में सबसे अधिक पराक्रम दिखाया है। मैं उसे आशीर्वाद देना चाहता हूँ। उसे मेरे पास लाओ।”

कृष्ण मुस्कराकर लोहे का बना भीम महाराज धृतराष्ट्र के सम्मुख करके बोले, “महाराज ! भीम आपके समक्ष है। आप इसपर अपना प्यार उड़ेलें और इसे गले से लगाएँ, क्योंकि यही आपको सबसे अधिक प्रिय है।”

महाराज धृतराष्ट्र ने लोहे के भीम को अपनी बाहुओं में भरकर पीसडाला। महात्मा विदुर ने धृतराष्ट्र का यह रूप देखकर कृष्ण की ओर देखा और मुस्करादिए।

धृतराष्ट्र ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति इतने आत्मबल के साथ लगाई कि पुतले के गिरते ही वह स्वयं भी विक्षिप्त से होकर पृथ्वी पर गिरपड़े और “हाय भीम, हाय भीम” चिल्लाने लगे। लोहे के भीम को चूर्ण करते ही दुर्योधन की मृत्यु का संताप उनके हृदय से जातारहा। वह अपने मन से भीम को मारने के पश्चाताप विह्वल होउठे। उनका सारा बदन काँपरहा था।

कृष्ण मुस्कराकर बोले, “महाराज ! आपके हृदय की भावना को मैंने आपके यहाँ आते ही जानलिया था। इसीलिए भीम को आपकी बाहुओं में न देकर मैंने लोहे का भीम आपको गले गलाने के लिए दिया था। आपका भीम आपके समक्ष खड़ा है।”

धृतराष्ट्र लज्जा से नतमस्त होगए। वह कृष्ण के समक्ष आत्मग्लानि से झुकगए।

फिर सब लोग मिलकर हस्तिनापुर चलेगए।

हस्तिनापुर का वायुमंडल स्त्रियों के विलाप से पूरित था। जिघर

भी सुनो विलाप का स्वर सुनाई देता था। राज-महलों में भी विलाप और उदासी के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

धर्मराज युधिष्ठिर ने मृतकों का विधिवत तर्पण किया। पांडव विजयी अवश्य हुए परन्तु बंधु-बांधवों का जो भीषण संहार हुआ था उससे उनकी आत्मा दुखी थी। इतने बड़े संहार ने युधिष्ठिर को वीतरागी बनादिया था। राजभवन उन्हें काटने को दौड़ते थे।

एक दिन उन्होंने अपने भाइयों को भी इसी प्रकार का उपदेश दिया तो अर्जुन बोले, “महाराज ! यदि वन-वास ही प्रिय था तो क्यों व्यर्थ इतना बड़ा नर-संहार किया ? दुर्योधन को आनन्द से राज्य करनेदेते। उनका अन्याय केवल हम लोगों के प्रति ही तो था। प्रजा तो उनसे प्रसन्न थी।”

युधिष्ठिर बोले, “अर्जुन ! यह सब कुछ ठीक है जो तुम कह रहे हो, परन्तु मेरा मन राज-सुख भोगने की दिशा में प्रेरित नहीं हो रहा है।”

भीम बोले, “महाराज ! आप तो सर्वदा त्याग का ही उपदेश देते आए हैं। यदि त्याग का यही रूप आपके समक्ष था तो अर्जुन ने सत्य ही कहा कि आपने क्यों व्यर्थ इतना नर-संहार कराया ?”

नकुल और सहदेव ने भी भीम और अर्जुन की ही बात का समर्थन करते हुए कहा, “महाराज ! आप यह त्याग मुक्ति की खोज में करना चाहते हैं। क्या मुक्ति का द्वार केवल वनों में ही जाकर उन्मुक्त होता है ? यदि ऐसा हो तो सब वनों के जीव जन्तु मुक्त होजाएँ।”

पांचाली बोलीं, “महाराज ! क्या अपनी उन सब बातों को भूल गए जो वन के कष्टों को सहन करते समय आप कहाकरते थे ? आज राज्य प्राप्त कर आप वीतरागी बनेजारहे हैं।”

युधिष्ठिर सबको अपने विरोध में देखकर बोले, “मेरा निश्चय अटल

है पांचाली ! मैं इस विषय में कोई तर्क नहीं सुनना चाहता । क्षत्रिय धर्म में मेरे भाई मुझसे कहीं अधिक निपुण हैं, परन्तु धर्म का ज्ञान तुम सबका नगण्य है ।”

ये बातें चलहीरही थीं कि तभी वेदव्यास वहाँ आगए । सबने उठकर उन्हें प्रणाम किया और आसन देकर पधारने का आग्रह किया । धर्मराज के वीतरागी होने का समाचार प्राप्तकर व्यासजी बोले, “युधिष्ठिर ! छात्र-धर्म का उचित पालन कर राज्य करने से संसार का हित होता है, पापी दण्ड पाते हैं और सज्जन शान्ति प्राप्त करते हैं । संसार में सुख तथा शांति की व्यवस्था होती है । अन्यायियों का दमन होता है । और वीतरागी होने से केवल मात्र अपने ही मन को शांति प्राप्त होती है ।”

धर्मराज बोले, “आपके उपदेश का उलंघन करने की क्षमता मुझमें नहीं है भगवन् ! परन्तु हृदय असंतोषी होउठा है । हमने दादा की हत्या की है । आचार्य द्रोण को धोखे से मारा है । मैं अभिमन्यु की मृत्यु का कारण बना हूँ । बड़े भाई कर्ण को मारा है । इस सबसे मेरे मन में आत्मग्लानि भरगई है । मेरे भाई मेरा अनुकरण करें या राज्य-सुख भोगें, परन्तु मुझे इस सबका प्रायश्चित्त करने के लिए वनवास को जाना ही होगा । इसके बिना मेरी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी ।”

अन्त में कृष्ण ने व्यासजी की बात का समर्थन करतेहुए कहा, “धर्मराज ! धर्म कर्म से विमुख होने का नाम नहीं है । वह धर्म अधर्म है जो मनुष्य की कर्म-प्रवृत्ति को रोकता है । कर्मण्य होकर अकर्मण्य होने की चेष्टा न करो । आपकी यह त्याग की भावना अकर्मण्यता की द्योतक है । राज्य-भार सँभालिए और प्रजा-जनों के संतृप्त हृदय को सांत्वना प्रदान कीजिए । क्या अपने मन की शांति के लिए आप समस्त प्रजा को अशांति की ज्वाला में झुलसने के लिए निराश्रित छोड़जाना चाहते हैं ? अब तक जितने अधर्म-कार्य आपने मिलाए वे सब नगण्य हैं । यह अकेला कार्य आपको महान् अधर्मों और अकर्तव्यपरायण घोषित करेगा ।”

कृष्ण की बात सुनकर धर्मराज बोले, “जब आपकी भी यही इच्छा है कृष्ण ! तो मैं राज्य-भार सँभालूँगा । परन्तु क्योंकि मेरा मन अशांत है इसलिए अभी आप कुछ दिन यहीं बने रहें ।”

व्यासजी बोले, “राज-भवन में चलकर राज-मुकुट ग्रहण करो युधिष्ठिर ! और राज्याभिषेक के पश्चात् राजर्षि भीष्म के दर्शन करो ।”

व्यासजी के आदेशानुसार श्रीकृष्ण के साथ युधिष्ठिर, पांचाली और पांडवों में नगर में प्रवेश किया । युयुत्स, सात्यकि, विदुर इत्यादि भी साथ होलिये ।

नगर को सजाया गया । एक बार फिर से हस्तिनापुर में मंगल छा- गया । इस आनन्द के गर्व में एक गहरी कसक थी । अन्तर्वेदना की चिरस्मृति थी, परन्तु पांडवों की धर्मपरायणता पर हस्तिनापुर की प्रजा मुग्ध थी । प्रजा ने पांडवों का सम्मान किया ।

राज-दरबार सजाया गया । यथा समय सब लोगों ने अपने-अपने आसनों को सुसज्जित किया । कौरवों के बचे-खुचे सरदारों को क्षमादान देकर दरबार में आने की आज्ञा दे दी गई । धर्मराज युधिष्ठिर राज-सिंहासन पर बैठे ।

श्रीकृष्ण ने धर्मराज का राज-तिलक किया । ब्राह्मणों ने आशीर्वाद- दिए और भाटों ने विरुदावलि गाईं । मंगल-नाद से राज्य-भवन गुंजायमान हो उठा ।

भीम युवराज, विदुरजी राज्य-मंत्री, संजय उपदेशक, नकुल सेनापति, अर्जुन गृहमंत्री और इसी प्रकार सब प्रतिष्ठित जनों को उपाधियाँ वितरित की गईं । महाराज धृतराष्ट्र को पिता तुल्य सम्मान प्रदान किया गया और सभी राज्य-कार्यों में उनका मत लेना आवश्यक माना गया ।

हस्तिनापुर के राज्य का ढाँचा बदल गया । धर्मराज ने युद्ध में काम आये कौरव तथा पांडव-पक्ष के सेनिकों के परिवारों का भार वहन किया । इससे प्रजा-जनों में सन्तोष की लहर दौड़ गई ।

राज्य की व्यवस्था ठीक कर धर्मराज कृष्ण से बोले, “कृष्ण ! अब सूर्य के उत्तरायण होने का समय निकट आगया है । हमें पितामह के पास चलना चाहिए ।”

कृष्ण ने सहमति प्रदान की और कुछ विशिष्ट लोग रथों पर सवार होकर कुरुक्षेत्र की ओर चलपड़े ।

कृष्ण ने आगे बढ़कर पितामह को प्रणाम किया और बोले, “दादा ! पांडव आपके अन्तिम दर्शनार्थ आए हैं । आपका आशीर्वाद प्राप्त करने की इनके मन में उत्कट इच्छा है ।”

दादा भीष्म बोले, “बच्चो ! तुमने छात्र-धर्म का पालन किया है । अन्याई को परास्त कर धर्मपूर्वक राज्य करना क्षत्री का धर्म है । वही तुमने किया है । तुम जैसा प्रजा-पालक राजा प्राप्तकर वसुन्धरा धन्य होगी ।”

पांडवों ने दादा के चरणों पर अपने मस्तक टिकादिए और विह्वल होकर पाँचों भाई बिलख-बिलख कर रोपड़े । दादा भीष्म के भी नेत्र पसीजउठे । उनके नेत्रों के दोनों कोनों में दो मोटे-मोटे आँसू उभरआए ।

दादा भीष्म कुछ देर पश्चात् बोले, “पांचाली ! तुमने उचित दण्ड दिया इस कुरु-वंश को । यह इसी योग्य था । इसकी संतान ने अपने पूर्वजों की मर्यादा को नष्ट किया था । माता देवयानी के उज्ज्वल चरित्र को कलंकित किया था । इसे यही दण्ड मिलना चाहिए था ।

इस पविवार ने तुम्हारे साथ जो व्यवहार किया उसका इसे इससे भी भयंकर परिणाम भुगतना चाहिए था । इस परिवार का सबसे बड़ा पातकी मैं हूँ । इतने दिन शर-शय्या पर पड़े रहकर मैं अपने पाप का प्रायश्चित्त करता रहा हूँ । परन्तु अभी भी मुझे शांति नहीं मिली । अब मृत्यु ही मुझे शान्ति प्रदान करेगी ।”

पांचाली के नेत्रों से अश्रुओं को धारा प्रवाहित होचली । वह

विह्वल होकर बोलीं, “दादा ! दोष आपका नहीं, दोष सब मेरा है । माता देवयानी के पद-चिन्हों पर चलना मैं न सीख सकी । यदि मैं उनके पद-चिन्हों पर चलती तो यह महाभारत कदापि न होता ।”

पांचाली का कण्ठ अवरुद्ध होगया । माता कुन्ती ने आगे बढ़कर पांचाली को अपनी बाँहुओं में भरलिया । वह अश्रु बरसातीहुई बोलीं, “दोष तेरा नहीं पांचाली, दोष मेरा है । तुमने मेरा अनुकरण किया है । यह मेरा दोष था कि मैं पांचाल से व्यर्थ लौटकर हस्तिनापुर आई । मैं अपने पुत्रों को साथ लेकर माता देवयानी की तरह संतोष करलेती तो आज यह दिन देखने में क्यों आता । अपने सब गुरुजनों का संहार क्यों होता ?”

दादा भीष्म गम्भीर वाणी में बोले, “पांचाली ! कुरु-वंश के हम जैसे पातकी गुरुजनों को मिटहीजाना चाहिए था । मेरी इन आँखों ने जो नीच कर्म न देखे, उन्हें उसी समय फूटजाना चाहिए था । दोष किसी का नहीं, सब दोष मेरा और माता सत्यवती का है । हमारा दोष हमारे बच्चों को सहन करना पड़ा ।

अब सब कुछ समाप्त होगया । तुम लोग नए युग का निर्माण करो । तुम्हारे समक्ष यह बदलता युग है । इसे नई रूपरेखा प्रदान करो । तुम्हारा कल्याण हो ।”

देखते-ही-देखते सूर्य उत्तरायण होगया और दादा भीष्म ने प्राण त्याग दिए । वह महान् आत्मा इस संसार से उठ गई ।

उसी समय सबने देखा कि वेदव्यास सामने खड़े थे । वह गम्भीर वाणी में बोले, “सचमुच युग बदल गया । युग-निर्माता भारत-भूमि से उठ गया ।”

केवल इतना मात्र कहकर वह जंगल की ओर बढ़ गए । अन्य सब स्तब्ध से खड़े रह गए ।
